स्वाध्याय स्वमन्थन स्वावलम्बन

MAST-02

पाली, प्राकृत अपभ्रंश तथा भाषा विज्ञान

उ॰प्र॰ राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

150

प्रथम खण्ड

पालि

विश्वविद्यालय परिसर

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, इलाहाबाद-211013

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त
विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

MAST-02

पाली, प्राकृत अपभ्रंश तथा भाषा-विज्ञान

खण्ड

1

पालि

इकाई - 1 5

पालि साहित्य का परिचय

इकाई - 2 50

पाली पाठ

पालि

इकाई –01 पालि साहित्य का परिचय

1.1 पालिभाषा : व्युत्पत्ति, उत्पत्ति, विकास और विशेषताऐं

1.2 पालि–साहित्य : सामान्य परिचय

1.3 पालि–व्याकरण

1.3.1 वर्णमाला

1.3.2 सन्धि, समास, कारक, कृत् तथा तद्धित प्रत्यय

1.3.3 शब्दरूप

1.3.4 धातुरूप

इकाई–02 पालि–पाठ

2.1 बावेरूजातकम्

2.2 मायादेविया सुपिनं

2.3 महाभिनिक्खमनं

2.4 महापरिनिब्बानसुत्तं

2.5 धम्मपदसंगहो

इकाई– 1 पालि

1.1 प्रस्तावना –

इतिहास की दृष्टि से मध्यकालिक आर्य भाषाओं की जो तीन अवस्थायें हैं, उनमें 'पालि भाषा' प्रथम स्थानीय है। भाषा के विकास की दृष्टि से पालिभाषा का अध्ययन अतीव महत्त्वपूर्ण है। संस्कृत की उच्च शिक्षा ग्रहण करने वाले विद्यार्थियों को इस दृष्टि से पालि भाषा का सामान्य परिचयात्मक अध्ययन कराया जाता है। परास्नातक कक्षाओं के संस्कृत के प्रथम वर्षीय पाठ्यक्रम में भाषा विज्ञान के साथ पालि के अध्ययन की व्यवस्था प्रायः सभी विश्वविद्यालयों में चल रही हैं क्योंकि पालिभाषा का संस्कृत भाषा के साथ निकट का सम्बन्ध है और कई अर्थों में पालि का व्याकरण और साहित्य संस्कृत–भाषा के व्याकरण और साहित्य से प्रभावित है। अतः स्वभाविक है कि पालिभाषा का ज्ञान संस्कृत के विद्यार्थियों के लिए पर्याप्त उपयोगी सिद्ध होता है।

इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए पालि का एक सन्तुलित पाठ्य क्रम निर्धारित किया गया है। और प्रथम खण्ड की दो इकाइयों में क्रमशः पालि भाषा साहित्य तथा व्याकरण और पालिसाहित्य के कुछ चुने हुए अंश संग्रहीत किये गये हैं।

1.2 उद्देश्य

प्रथम खण्ड अर्थात् इकाई 1 और 2 का अध्ययन करने के पश्चात् आप–

1. 'पालि' शब्द की व्युत्पत्ति और पालिभाषा की उत्पत्ति जान सकेंगे।
2. पालि भाषा के विकास से परिचित हो सकेंगे।
3. प्राकृत भाषा में निबद्ध बौद्ध धर्मदर्शन के ग्रन्थों तथा अन्य अनेक साहित्यिक ग्रन्थों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
4. पालि भाषा के व्याकरण का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
5. पालिभाषा के व्याकरण का अभ्यास कर लेने पर आप इस महत्त्व पूर्ण भाषा का प्रारम्भिक सरल प्रयोग स्वयं कर सकेंगे।
6. पालिभाषा के पाठों को पढ़ने तथा अर्थ बोध करने में समर्थ हो सकेंगे। पालि के अंशों का संस्कृत रूपान्तरण करने एवं समझने में सुविधा होगी।
7. तत्कालीन भारत की संस्कृति का भी ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

1.3 पालिभाषा – व्युत्पत्ति,उत्पत्ति, विकास और विशेषताएं –

ऐतिहासिक दृष्टि से तथा भाषाविज्ञान का अनुशीलन करने से, भारतीय आर्य भाषाओं की तीन दशायें परिलक्षित होती हैं । भाषा के विकास के सिद्धान्तों के परिप्रेक्ष्य में विद्वानों ने इसे अधोलिखित क्रमानुसार स्वीकार किया है –

1.3.1 प्राचीन भारतीय आर्य भाषा –

वैदिक संस्कृत एवं लौकिक संस्कृत (प्रागैतिहासिक काल से 500 ई. पू. तक)।

1.3.2 मध्य भारतीय आर्य भाषा –

पालि, प्राकृत एवम् अपभ्रंश भाषा (500 ई. पूर्व से 1000 ई. तक)

1.3.3 आधुनिक भारतीय आर्यभाषा –

हिन्दी साहित्य भारत की सभी आधुनिक (प्रान्तीय) भाषाएँ (1000 ई. से वर्तमान काल) ।

पालिभाषा मध्यभारतीय आर्यभाषा के अन्तर्गत परिगणित है। यह वस्तुतः भगवान् बुद्ध के उपदेश की भाषा है। सम्प्रेषणीयता की दृष्टि से श्रोता को उसी की भाषा में समझाना उचित होता है। तभी वस्तु बोध और ग्राह्य होती है। इसी दृष्टि से भगवान् बुद्ध ने अपने उपदेश जनभाषा में दिये बुद्ध के महापरिनिर्वाण के पश्चात् आचार्यों ने उनके वचनों का संग्रह इसी उददेश्य से प्रादेशिक जनभाषा 'मागधी' में किया। अधोलिखित गाथा बुद्धवचन की मूलभाषा 'मागधी' को प्रमाणित करती है –

सा मागधी मूलभाषा नरा यायादिकघिका ।

ब्राम्हणा चूस्सुतालापा संबुद्धा चापि भासरे ।।

बाद में चलकर इस लोकभाषा मागधी को जब बुद्धसंघ और राज्य शासन का आश्रय प्राप्त हुआ तब इसका साहित्यिक स्वरूप विकसित हुआ। यहाँ जान लेना आवश्यक है कि उस समय की मूलभाषा मागधी ही 'पालि' भाषा नहीं है। वह बहुत कुछ परिवर्तित और भिन्न है। इसका कारण है कि भिन्न–भिन्न स्थानों से आये भिक्षुगण संघों में साथ साथ रहते थे। और तथागत बुद्ध ने उन्हें भाषिक व्यवहार की छूट दे रखी थी – "अनुजानामि भिक्खवे, सकायनिरूत्तिया बुद्धचनं परियापुणितं" अर्थात्, "हे भिक्षुगण" !

अपनी अपनी भाषा में बुद्धिवचन की शिक्षा लेने के लिए अनुमति देता हूँ।" परिणामतः मागधी की प्रमुखता होते हुए भी इस लोकभाषा का मिश्रित स्वरूप विकसित हुआ और कालान्तर में यह भाषा 'पालि' भाषा के नाम से प्रसिद्ध हुई।

मागधी भाषा का 'पालि' नाम पड़ने के कारण पर विचार करना तर्कसंगत होगा।जिस भाषा में बुद्धवचनों का संग्रह और संरक्षण किया गया, उसकी संज्ञा 'पालि' होने के पीछे यह कारण हो सकता है कि मूल त्रिपिटक के लिए 'पालि' शब्द का प्रयोग प्राचीन काल से ही प्राप्त है – 'पिटकत्तयपालिं च तस्स अट्ठकथं पिच' (दीपवंस, 20.20)।

मागधी (अथवा अर्धमागधी) को 'पालि' नाम देने के पीछे चाहे जो भी कारण रहा हो किन्तु बुद्धवचन की भाषा के रूप में प्रयुक्त 'पालि' के नामकरण के सम्बन्ध में विद्वानों ने अपने मत कुछ इस प्रकार दिये हैं –

1. भिक्षु सिद्धार्थ के अनुसार 'पाठ' ही रूपान्तरित होकर 'पालि' हो गया पाठ > पाल > पालि ।

2. पण्डित विधुशेखर भट्टाचार्य ने 'पालि' का व्युत्पत्तिपरक स्वरूप प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार, 'पालि' का अर्थ है 'पंक्ति' । मोग्गालान ने 'पा रक्खणे' धातु से ण्वादि का 'लि' प्रत्यय लगाकर –पा+लि – पालि शब्द को व्युत्पन्न करते हुए इसका अर्थ 'पंक्ति' किया है। इस अर्थ में (पंक्ति, कतार, श्रेंणी, समूह आदि) 'पालि' शब्द का प्रयोग कई ग्रन्थों के साथ हुआ है। यथा–उदानपालि, पचित्तिय पालि इत्यादि।

3. संस्कृत भाषा के 'पल्लि' (अथवा 'पल्ली') का अर्थ है गॉव या ग्राम। दक्षिण भारत, बंगाल और उड़ीसा में आज भी यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त है और अनेक ग्रामों (अथ च नगरों–कस्बों) के नाम के अन्त में पाली या पल्ली शब्द जुड़ा हुआ है। गॉव की भाषा होने के कारण प्रारम्भ में इसे 'पल्लिभाषा' कहा जाता रहा होगा । आगे चलकर यह 'पल्लि' 'पालि' हो गया।

4. कुछ विद्वानों के अनुसार, 'प्राकृत' शब्द ही विकृत (विकसित) होते होते क्रमशः 'पालि' हो गया। वे इस निरूक्ति को इस प्रकार प्रदर्शित करते हैं – प्राकृत > पाकर > पाअड > पाअल > पाइल > पालि ।

5. डॉ. मैक्सवेलेसर का मत है कि पाटलिपुत्र की भाषा होने के कारण पहले इसका नाम 'पाटलि' रहा होगा और धीरे–धीरे परिवर्तित होकर यह 'पाटलि' से 'पालि' हो गयी – पाटलि > पाडलि > पाअलि > पालि ।

6. भिक्षु जगदीश काश्यप आदि विद्वानों का इस सम्बन्ध में कथन है कि 'त्रिपिटक' में अनेक स्थलों पर बुद्धसना के अर्थ में प्रयुक्त 'परियाय' शब्द ही

आगे चलकर 'पालि' हो गया। अशोक के एक शिलालेख में 'परियाय' के स्थान पर 'पलियाय' शब्द का प्रयोग हुआ है। अतः इस रूप में निरूक्ति का क्रम इस प्रकार होगा– परियाय >पलियाय >पालियाय >पालिय >पालि।

7. कुछ विद्वानों ने 'प्रालेय' (= पड़ोसी) शब्द में 'पालि' का मूल खोजने का प्रयास किया है किन्तु यह उचित नहीं जान पड़ता ।

इस प्रकार, 'पालि' शब्द में विद्वान एकमत नहीं हैं और अपने–अपने मत के अनुसार इस शब्द की व्युत्पत्तियॉं दी हैं।

जैसा कि नाम से ही प्रतीत होता है, 'मागधी' मगध प्रान्त एवम् उसके समीपवर्ती स्थानों की लोकप्रयुक्त भाषा रही होगी। यही 'मागधी' कालान्तर में पालि के रूप में विकसित हुई । अतःकहा जा सकता है कि पालिभाषा का उद्भव स्थल मगध प्रान्त ही रहा ।

आर. डेविड्स ने, इस आधार पर कि तथागत ने स्वयम् अपने को 'कोसल खत्तिय' (कोशल क्षत्रिय) कहा है, पालि को कोसल प्रान्त की भाषा माना है। उनका तर्क है कि कोसल प्रान्त भगवान् बुद्ध की जन्मभूमि है, अतः उनकी मातृभाषा पालि ही रही होगी। इसके अतिरिक्त, इस मत के समर्थन में एक तथ्य यह भी है कि भगवान् बुद्ध के महानिर्वाण के सौ वर्ष पश्चात् कोसल में ही उनके वचनों (उपदेशों) का संग्रह किया गया । किन्तु भिक्षु जगदीश काश्यप, विण्टर नित्ज, चाइल्डर्स आदि इससे सहमत नहीं हैं और वे पूर्वमत के ही पोषक हैं। उनका तर्क है कि जन्म से क्या ? तथागत का कार्यक्षेत्र तो मुख्यतया मगध ही रहा। वैस्टरगार्ड पालि को उज्जैन की भाषा मानते हैं। ओल्डन वर्ग ने खारवेल के खण्डगिरि शिलालेख का आधार लेकर पालि को कलिङ्ग प्रान्त की भाषा सिद्ध करने का प्रयास किया है। स्टेनकोनों और आर. ओ. फ्रेंक पालि को विन्ध्यप्रदेश की भाषा मानते हैं ।

सामान्य तर्क और अनुल्लेख प्रमाणों के आधार पर कोई मत प्रतिपादित कर देना नितान्त हास्यास्पद है। अतःपालि को कलिङ्ग, उज्जैन अथवा विन्ध्य प्रदेश की भाषा सिद्ध करने का प्रयास उचित नहीं है। हॉं, कोसल और मगध प्रान्त परस्पर समीपवर्ती हैं और हर दृष्टि से एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। तथागत ने कोसल में केवल जन्म ही नहीं लिया था अपितु काशी–कोशल प्रान्त उनका कार्यक्षेत्र भी रहा है। इसलिए आर. डेविड्स के मत को कुछ हद तक स्वीकार कियाय जा सकता है। वस्तुतः मूल मागधी और पालि में संरचनागत अनेक मौलिक अन्तर भी हैं। अतः सम्भव है कि व्यावहारिक स्तर पर पालि भाषा, मागधी और कोसल प्रान्त की भाषा का मिला जुला रूप हो। यह सत्य है कि तथागत का अधिकांश कार्यक्षेत्र, उनके धर्म प्रचार की

गतिविधियों और प्रश्रयी अशोक आदि सम्राटों की भूमि तो मगध ही रही। इस आधार पर, यह सबलतया कहा जा सकता है कि पालिभाषा की उत्पत्ति मागधी से ही हुई, वहीं उसका पोषण और विकास हुआ तथा वर्तमान साहित्यिक स्वरूप भी उसे वहीं प्राप्त हुआ। निस्सन्देह पालि भाषा का उद्भव स्थल ही है। कालान्तर में तो यह भाषा राज्याश्रय और लोकाश्रय से, बौद्ध धर्म के साथ–साथ प्रचारित प्रसारित होती रही। यह भाषा मात्र मगध, कोसल अथवा भारत में ही नहीं फैली अपितु लंका, ब्रह्मदेश, श्याम, चीन, तिब्बत आदि में भी बुद्धवचन का माध्यम बन कर व्याप्त हुई। बौद्ध धर्म–दर्शन के ग्रन्थों के अतिरिक्त भी पालि भाषा में विपुल साहित्य की रचना हुई। परवर्ती भाषा साहित्य पर भी इसका व्यापक प्रभाव परिलक्षित होता है।

पाश्चात्य विद्वान् विंडिश और गायगर के अनुसार पालि एक साहित्यिक भाषा के रूप में स्थापित हुई और यह पूर्वोत्तर भारत के सभी जनपदों में, यहाँ तक कि मध्यभारत में भी बोली और समझी जाती थी। विकसित होकर साहित्यिक भाषा का रूप शीघ्र ही धारण कर लेना यह पालि की निजी विशेषता है। इसके अतिरिक्त यह पालिभाषा, अन्य मध्यकालीन आर्य भाषाओं की अपेक्षा सरलतर और अधिक बोधगम्य रही।

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन का मानना है कि त्रिपिटक मूल मागधी भाषा में ही लिखे गये। किन्तु सिंहल में बसे गुजराती प्रवासियो को ढाई सौ वर्षों तक इसे कण्ठस्थ करने का दायित्व सौंपा गया था। सम्भवतः इसी दौरान मागधी भाषा की समस्त विशेषताएँ गायब हो गयीं।

डा. सुनीति कुमार चाटुर्ज्या का मत है कि भारतवर्ष में हमेशा मध्यदेश की ही भाषा रही। भगवान बुद्ध ने अपने उपदेश पूर्व देश की भाषा में ही दिये होंगे किन्तु जब उनका सङ्कलन हुआ तो माध्यम पालि भाषा हुई जो तब तक पर्याप्त साहित्यिक हो चुकी थी।

यह संयोग की बात है जिस समय पूर्वोत्तर भारत में बौद्ध धर्म का प्रचार–प्रसार हो रहा था, लगभग उसी कालखण्ड में पश्चिमोत्तर भारत में जैन धर्म भी जनता के बीच लोकप्रिय हो रहा था। दोनों में इतनी समानता अवश्य थी कि दोनों ही अहिंसक धर्म हैं। जैन धर्म के प्रचार–प्रसार का माध्यम महाराष्ट्री प्राकृत थी और बौद्ध धर्म का माध्यम मागधी (प्राकृत) जो बाद में चल कर 'पालि भाषा' के रूप में प्रतिष्ठित हुई ।

1.4 पालि साहित्य : सामान्य परिचय

पालि भाषा मुख्यतः बौद्ध धर्म दर्शन को अभिव्यक्त करती है। इसमें स्थातिरवादी बौद्धधर्म का सम्पूर्ण साहित्य लिखा गया है। पालि साहित्य का

प्रणयन भगवान बुद्ध के महानिर्वाण के कई वर्ष पश्चात् सुविचारित रूप से क्रम बद्ध तथा सुनियोजित तरीके से प्रारम्भ हुआ। भगवान् बुद्ध के महानिर्वाण के पश्चात उनकी शिष्य परम्परा के आचार्यों ने, उनके वचनों (उपदेशों तथा शिक्षाओं) को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से बौद्ध विद्वानों का सम्मेलन बुलाकर उन उपदेशों का क्रमबद्ध संग्रह किया। इस प्रकार के तीन सम्मेलन बुलाये गये। प्रथम सम्मेलन राजगृह में, महानिर्वाण के कुछ ही वर्ष बाद बुलाया गया। द्वितीय सम्मेलन 377 ई0 पू0 में वैशाली में बुलाया गया और तृतीय अन्तिम सम्मेलन 255 ई0पू0 पाटलिपुत्र में बुलाया गया। इन तीनों सम्मेलनों में 'त्रिपिटकों' का रूप निर्धारित हुआ। इस प्रकार, पालि साहित्य को प्रमुख रूप से आरम्भिक तौर पर दो भागों में बॉटा जा सकता है – पहला भाग – शास्त्रीय साहित्य और दूसरा शास्त्रीय से इतर साहित्य। पहले भाग में त्रिपिटिक ग्रन्थ आते हैं और दूसरे भाग में उससे अतिरिक्त शेष ग्रन्थ। 'त्रि' का अर्थ है तीन और 'पिटक' का अर्थ है पेटी या मंजूषा। जैसे मंजूषा में बन्द करके कोई वस्तु सुरक्षित रखी जाती है वैसे ही इन तीनों पिटकों में बुद्धवचन सुरक्षित किये गये हैं। इन त्रिपिटकों के नाम क्रमशः विनय पिटक, सुत्त पिटक और अभिधम्म पिटक हैं ।

विनयपिटक – बौद्धधर्म –दर्शन में 'विनयपिटक' का महत्व सर्वोपरि है। विनय का अर्थ है – शिक्षा। बुद्ध शासन का मूल विनय पिटक में ही संरक्षित है। विनयपिटक वस्तुतः बौद्धसंघ का संविधान है क्योंकि इसमें बौद्धसंध की व्यवस्था, भिक्षु और भिक्षुजियों के नित्य तथा नैमित्तिक कर्म, उपसम्पदानियम, भोजन एवं वस्त्र संबंधी आचार–विचार, वर्षावास के नियम, संघभेद होने पर संघसामग्री सम्पादन के नियम आदि वर्णित हैं।

विनयपिटक के तीन विभाग हैं –सुत्तविभंग, खन्धक एवं परिवार। सुत्तविभंग के दो भाग हैं – पाराजिक और पाचित्तिय । सुत्तविभंग मे उन अपराधों का उल्लेख किया गया है जिनके कारण भिक्षु को उसका दण्ड भूगतना पड़ता है। इन दण्डों में नानाविध प्रायश्चित्त हैं और संघ से निष्कासन भी है। ये कुल 227 (दो सौ सत्ताइस) प्रकार के अपराध यहॉ कहे गये हैं। और अपराध नियमों का विभाजन आठ वर्गों में दिया गया है।

खन्धक के भी दो विभाग हैं –महावग्ग और चुल्लवग्ग। खन्धक में संघ की जीवन चर्या वर्णित है। महावग्ग के दस उपविभाग हैं, इसमें सम्बोधि प्राप्ति से लेकर प्रथम संघ की स्थापना का इतिहास भी वर्णित है। चुल्लवग्ग में अनिरूद्ध, उपालि और आनन्द के सन्यास का वर्णन है। प्रथम दो बौद्धसंगीतियों का विवरण भी चुल्लवग्गा के अन्त में दिया हुआ है।

सुत्तपिटक – भगवाद बुद्ध अपने शिष्यों, भिक्षुओं को धम्म और विनय की

शरण में छोड़कर गये थे। सुत्तपिटक उसी धम्म और विनय का सङ्ग्रह है जिसमें बुद्धवचन निहित है।

'सुत्त' (सूत्र) का सीधा अर्थ सूत या धागा है। जिस प्रकार सूत का गोला प्रयोजनवशात् खुलता चला जाता है उसी प्रकार सुत्तपिटक से भी बुद्धवचन खुलते चले जाते हैं। अतः लाक्षणिक रूप से सुत्तपिटक को सूत्र रूप बुद्धवचनों का सङ्ग्रह या परम्परा कहा जा सकता है। सुत्तविटक में भगवान् बुद्ध के अतिरिक्त उनके शिष्यों सारिपुत्त, मौद्गलायन और आनन्द के भी उपदेश सम्प्राप्त होते हैं।

सुत्तपिटक के पॉच उपविभाग हैं – दीघनिकाय, माज्झिम निकाय, संयुक्त निकाय, अंगुत्तर निकाय और खुद्दक निकाय। दीघनिकाय में लम्बे बड़े तथा मज्झिम निकाय में मझोले आकार के सुत्तों का संग्रह है। संयुक्त निकाय में छोटे बड़े सभी आकार के सुत्त संग्रहीत हैं। निकायों में संग्रहीत सुत्तों के आकार का कोई नियम नहीं है। सुत्तों की गद्यमयता या पद्यमयता का भी कोई नियम नहीं है। कुछ सुत्त गद्यमय कुछ पद्यमय और कुछ मिश्रित हैं।

अंगुत्तर निकाय में भी पूर्व निकायों की भॉति बुद्धवचन संग्रहीत हैं। खुद्दक निकाय के अन्तर्गत सुत्तों का संग्रह नहीं अपितु छोटे–छोटे ग्रंन्थों का सङ्कलन है। इस दृष्टि से यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है। **खुद्दक निकाय** में पन्द्रह लघुकाय ग्रन्थ हैं – खुद्दक पाठ, धम्मपद, उदान, इतिवुत्तक, सुत्तनिपात, विमानवत्यु, पेतवत्यु, थेरगाथा, थेरीगाथा, जातक, निद्देस, परिसम्मिदा, मग्ग, अपदान, बुद्धवंस और चरिआपिटक। सहत्र सङ्कलित होते हुए भी इन ग्रन्थों की विषय वस्तु और भाषा शैली मे समानता नहीं है। इनमें से कुछ महत्वपूर्ण ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है –

धम्मपद :

बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों और सभ्यता मार्ग को, भगवान बुद्ध के सरल उपदेशों के माध्यम से प्रतिपादित करने वाला एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें कुल छब्बीस वर्गों में विभक्त 423 गाथाएँ (पद्य) हैं। धम्मपद को बौद्ध धर्म की 'गीता' कहना उचित होगा। जिस तरह श्रीमद्भगवद्गीता स्वतंत्र रचना न होकर महाभारत का ही एक अंश है, उसी तरह धम्म पद भी खुद्दक निकाय का एक अंश है। गीता में वक्ता और श्रोता मात्र एक एक हैं। किन्तु धम्म पद में वक्ता एक भगवान् बुद्ध हैं किन्तु श्रोता अनेक उनके शिष्य है। गीतोपदेश कुरूक्षेत्र के अशान्त रणक्षेत्र मे एक ही स्थल पर हुआ था किन्तु धम्मपदोपदेश शान्त विहार स्थलों में अलग अलग स्थानों पर हुआ है। गीता का उपदेश काल अविच्छिन्न रहा किन्तु धम्मपद के उपदेश भिन्न भिन्न कालों में हुए हैं।

गीता में ज्ञान, कर्म और भक्ति का प्रतिपादन किया गया है, धम्मपद में सत्कर्म की महत्ता प्रतिपादित है। गीता उच्चकोटि का प्रौढ़ ग्रन्थ है और उसका दर्शन अत्यन्त गहन है। किन्तु धम्मपद बौद्धधर्म का प्राम्भिक ग्रन्थ है। और उसमें सन्निहित दर्शन केवल नैतिक धरातल तक ही सीमित है।

'धम्मपद' दो शब्दों के मेल से बना है। 'धम्म' (धर्म) का अर्थ है सदाचार और 'पद' का अर्थ है स्थान या मार्ग। 'पद' का अन्य अर्थ वचन या वाणी भी है। अतः 'धम्मपद' का आशय भगवान् बुद्ध द्वारा उपदिष्ट सदाचार का मार्ग या वचन है।

मूलरूप में धम्मपद का कर्ता भगवान् बुद्ध को ही माना जाना चाहिए किन्तु धम्मपद में उनके उपदेशों का जो स्वरूप प्राप्त होता है, वह भगवान् बुद्ध का मूल वचन है – ऐसा नहीं कहा जा सकता क्योंकि धम्मपद की गाथाओं का निर्माण (अथवा संकलन) भगवान् बुद्ध के महानिर्वाण के सैकड़ों वर्ष बाद हुआ। इससे यह प्रतीत होता है कि संकलनकर्ताओं ने श्रुत एवं स्मृत उपदेशों को अपने तरीके से प्रस्तुत किया होगा। अतः प्रतिपाद्य वस्तु और शैली में सहज अन्तर आना स्वाभाविक ही है। धम्म पद का जो वर्तमान स्वरूप है उसमें पद्यात्मक गाथाएं हैं। मूल उपदेश वचन गद्य में थे या पद्य में यह भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। लङ्का नरेश वट्टगामणी (88–76 ई0 पू0) के आदेश से उनके शासन काल में धम्मपद को लिखित रूप प्राप्त हुआ था।

धम्मपद के प्रामाणिक प्राचीन टीकाकार आचार्य बुद्धघोष से पूर्व ही धम्म पद पर सिंहली भाषा में 'धम्मपदट्टकथा' उपलबध थी। आचार्य बुद्धघोष ने उसका रूपान्तर पालिभाषा में किया। धम्मपदट्ठ कथा में तथागत के उपदेशों से सम्बद्ध अवतरणाएं (प्रस्ताविक कथाएँ) हैं : प्रायःजिज्ञासु भिक्षु किसी असम्मान्य घटना के सम्बन्ध में भगवान् बुद्ध से प्रश्न करते थे और भगवान् बुद्ध उस घटना का समाधान करते हुए उपदेश देते थे। इस प्रकार, धम्मपदटट कथा में कौन सी गाथा, किस सम्बन्ध में किसे, कहाँ उपदिष्ट हैं – इसका पूरा विवरण प्राप्त होता है। इन गाथाओं की कुल संख्या 305 है। श्रावस्ती के जेतवन में सर्वाधिक 185 गाथाएँ और राजगृह में 42 गाथाएं उपदिष्ट हैं। शेष गाथाएं पूर्वारम्भ, वेणुवन, कपिलवस्तु, वैशाली और न्यग्रोधारम्भ में कही गयी है।

सुत्त निपात –

सुत्त निपात भी एक महत्त्वपूर्ण लधु ग्रन्थ है। अशोक के बभ्रु शिलालेख में जिन सात बुद्धोपदेशों का उल्लेख किया गया है, उनमें से तीन सुत्तनिपात में प्राप्त है।

सुत्तनिपात की भाषा और छन्द वैदिक भाषा और छन्दों से पर्याप्त समानता रखते हैं । विषयवस्तु की दृष्टि से सुत्तनिपात पांच वर्गों में विभक्त है – 1. उरगवग्ग (12 सुत्त), 2. चुल्लवग्ग (14 सुत्त), 3. महावग्ग (12 सुत्त), 4. अट्ठकवग्ग (16 सुत्त) और पारायणवग्ग (17 सुत्त)। इनमें से उरगवग्ग का दूसरा सुत्त है – 'धनियसुत्त' । इस प्रसिद्ध सुत्त में एक धन सम्पन्न गृहस्थ और एक ध्यान सम्पन्न विरक्त के बीच संवाद के माध्यम से दोनों सुखों की तुलना करते हुए यह प्रदर्शित करने की चेष्टा की गयी है कि सांसारिक सुख एक छलावा है।

थेरगाथा एवं थेरीगाथा –

इन दोनों गाथा ग्रन्थों में भिक्षु–भिक्षुणियों के जीवन संस्मरण हैं। थेरगाथा में बुद्ध के समकालिक 255 भिक्षुओं और थेरीगाथा में उसी काल की 63 भिक्षुणियों के जीवन संस्मरण संग्रहीत हैं। थेर गाथा में इक्कीस निपात और उनमें 1279 गाथाएँ हैं। थेरीगाथा में 16 नियात और 522 गाथाएँ हैं। थेरगाथा में भिक्षुओं ने अन्तर्जगत् के अनुभवों पर विशेष बल दिया है। जबकि थेरी गाथा में भिक्षुणियों ने वैयक्तिक जीवन पर अधिक बल दिया है। इसमें उन्होंने उस समय की अपनी यथार्थ स्थिति का वर्णन किया है।

जातक –

खुद्दक निकाय का दसवां प्रसिद्ध ग्रन्थ 'जातक' है। इतिहास, साहित्य और धर्माचार की दृष्टि से इसका उल्लेखनीय महत्त्व है। इस ग्रन्थ में भगवान् बुद्ध के पूर्व जन्मों से सम्बद्ध गाथाएं तथा उक्तियॉ हैं। 'जातक' शब्द का अर्थ है जन्म विषयक। यह 22 निपातों में विभक्त हैं जिनमें कुल मिलाकर 547 जातक हैं। सभी जातक गाथाओं में निबद्ध हैं। इनका विस्तार हमें 'जातकट्टकथा' में प्राप्त होता है। जातकों के पूर्ण अर्थबोध के लिए जातकट्टकथा का ज्ञान होना नितान्त आवश्यक है। जातकट्टकथा के प्रारम्भ में एक सुदीर्घ भूमिका है जिसे 'निदानकथा' कहा जाता है। निदानकथा में सिद्धार्थ गौतम के जीवन चरित्र के साथ, उनके पूर्व–पूर्व 24 बुद्धों का जीवन चरित भी वर्णित है, जिनका संग्रह 'बुद्धवंस' से किया गया है। प्रत्येक जातक कथा के चार भाग होते हैं – पच्चुपन्न वत्थु, अतीत वत्थु, अत्थ वण्णना और समोधाम । 'पच्चुप्पन्न वत्थु' का अभिप्राय है वर्तमान कथा अर्थात् भगवान् बुद्ध की समकालीन कोई घटना । 'अतीत वत्थु' का तात्पर्य है भगवान् बुद्ध द्वारा कही गयी पूर्व जन्म की कथा। 'अत्थ वण्णना' का तात्पर्य है गाथाओं की व्याख्या, जिसमें गाथाओं का अर्थविश्लेषण और स्पष्टीकरण भली–भॉति किया गया हो। 'समोधान' अन्तिम अंश है जिसमें भगवान् बुद्ध, उस जातक (कथा) के वर्तमान प्रधान पात्रों के पूर्व जन्म का नामादि परिचय देते हैं और

बताते हैं कि वे अर्थात् बोधिसत्त्व स्वयं उस समय किस योनि में उत्पन्न होकर किस रूप में थे?

जातकट्टकथा के अनुशीलन से जातकों महत्त्व अच्छी तरह ज्ञात होता है। आर्यशूर द्वारा विरचित 'जातकमाला' प्रकाशित है। इन जातकों की प्राचीनता के द्योतक चिह्न भरहुत, सांची और अन्यत्र भी बौद्धस्थलों में उत्कीर्ण जातक कथाओं के चित्र हैं।

यद्यपि जातको का मुख्य उद्देश्य धर्मोपदेश है तथापि इनसे तत्कालीन भारत की ऐतिहासिक, भौगोलिक, सामाजिक और धार्मिक स्थिति का पूर्ण ज्ञान होता है। उस समय के समाज का चित्रण, अत्यन्त उपादेय तथा मूल्यवान है। जातक साहित्य सही अर्थों में जन–साहित्य है। भारतीय जीवन का ऐसा कोई पक्ष नहीं, जो जातक कथाओं में उपलब्ध न हो। इसमें हमारी सामान्य दिनचर्या से लेकर ललितकला, शिल्पकला, व्यापार विधि से लेकर अर्थ, धर्म, समाज विषयक नीतियॉ तथा राजनीति भी प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। उस काल का भूमण्डलीय पर्यावरण भी पर्याप्ततया उल्लिखित है।

अभिधम्म पिटक – त्रिपिटक वाङ्मय का तृतीय मुख्य भाग है – अभिधम्मपिटक ।

वर्ण्यविषय के अनुसार 'अभिधम्म' का अर्थ विभिन्न प्रकार से किया गया है। 'सुत्त पिटक' में 'अभिधम्म' का प्रयोग 'अभिविनय' के साथ किया गया है जहॉ उसका आशय धर्म सम्बन्धी गम्भीर उपदेश प्रतीत होता है। आचार्य बुद्धघोष ने 'अभिधम्म' का अर्थ 'उच्चतर धम्म' अथवा 'विसेस धम्म' किया है।

सुत्तपिटक में सन्निहित बुद्धदेवना को ही अभिधम्मपिटक में कुछ अधिक व्याख्यात्मक रीति से प्रस्तुत किया गयाय है किन्तु कहीं से ऐसा नहीं लगता कि एक ही वस्तु का पिण्ट पेषण हो रहा है। उदाहरण के लिए 'विभज्यवाद' को लिया जा सकता है। यह दर्शन सुत्त और अभिधम्म –दोनों ही का विषय है। 'विभज्यवाद' कहते हैं। मानसिंह और भौतिक जगत दोनों का ही विश्लेषण कर लेने पर भी 'अत्ता' (आत्मा) के न प्राप्त होने को। भिक्षु जगदीश काश्यप इसे 'रथ' के दृष्टान्त से समझाते हैं। जैसे रथ चक्र की धुरी, नाभि, द्वारों से अलग सत्ता नहीं है, वैसे ही रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार आदि स्कन्धों से भिन्न पुद्गल की कोई सत्ता नहीं है।

अभिधम्मपिटक में व्यक्ति के साथ बाह्य संसार के सम्बन्ध की व्याख्या करने के लिए बारह आयतनों का निरूपण किया गया है। इसमें स्कन्धों का भी अङ्गसहित विवरण प्रस्तुत किया गया है।

अभिधम्मपिटक का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है – 'धम्म संगणि' । इस ग्रन्थ में भौतिक एवं मानसिक जगत् की विभिन्न दशाओं का गहन तात्त्विक विवेचन किया गया है। इसकी विशेषता है बाह्य और आभ्यन्तर जगत नैतिक व्याख्या। नैतिक व्याख्या का अभिप्राय है कर्म के शुभाशुभ से अतिरिक्त विभागों में रूप में व्याख्या। ऐसे सूक्ष्म विवेचनों के कारण ही धम्मसंगणि अभिधम्म वाङ्मय की प्रतिष्ठा के रूप में जाना जाता है।

'विभंग' अभिधम्मपिटक का द्वितीय ग्रन्थ है। धम्मसंगणि का व्यापक विश्लेषण इसमें वर्गबद्ध किया गया है। इस प्रकार, यह धम्मसंगणि का पूरक ग्रन्थ है। विभंग का अर्थ है विस्तृत विभाजन। विभंग में 18 विभाग हैं। विभंग के ये विभाग स्वयं में (प्रत्येक पृथक्–पृथक्) पूर्ण हैं।

विभंग के पश्चात् 'धातुकथा' निबद्ध है। इस ग्रन्थ का वर्ण्य विषय है स्कन्ध, आयतन और धातु। इन तीनों का सम्बन्ध धर्मों के साथ प्रदर्शित करना ही धातुकथा की विशेषता है। वहां इन धर्मों की संख्या 125 है।

'पुग्गल पञ्ञति' भी अभिधम्मपिटक का एक महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। 'पुग्गल' का अर्थ है जीव– व्यक्ति और 'पञ्ञति' का अर्थ है प्रज्ञप्ति – ज्ञान। इस प्रकार, नाना प्रकार के व्यक्तियों के विषय में ज्ञान कराना ही इस ग्रन्थ का वर्ण्यविषय है। इस ग्रन्थ में दस अध्याय हैं।

अभिधम्मपिटक में 'कथावत्थु' के अन्तर्गत कुछ दार्शनिक सिद्धान्तों का खण्डन किया गया है। इस ग्रन्थ में 23 अध्याय हैं। इसी प्रकार, दस अध्यायों में विभक्त 'यमक' अभिधम्म में प्रयुक्त पदावली की निश्चित व्याख्या प्रस्तुत करता है। प्रश्नों के अनुकूल – प्रतिकूल युग्मकों में रखने के कारण इसका नाम अन्वर्थक है।

अभिधम्मपिटक में 'पट्ठान' का स्थान कम महत्वपूर्ण नहीं है। इसमें 'प्रतीत्यसमुत्पाद' को समझाया गया है।

त्रिपिटक के रूप निर्धारण और अट्ठकथाओं के निर्माण के बीच के समय में कुछ अन्य भी पालिसाहित्य को समृद्ध करने वाले ग्रन्थों की रचना हुई। अट्ठकथाओं के साथ ही नेत्तिप्रकरण और मिलिन्दपञ्ह ग्रन्थ प्रसिद्ध है।

अट्ठकथा –

पालि साहित्य में अट्ठकथाओं का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये अट्ठकथाएं प्रायः भगवान् बुद्ध के एक हजार वर्ष पश्चात् लिखी गयीं । जो तीन अट्ठकथाकार प्रसिद्ध हैं, वे हैं बुद्धघोष, बुद्धदत्त और धम्मपाला इनमें से बुद्धघोष ऐसा नाम है जो पालिसाहित्य का पर्याय ही है। इनके कर्तृत्व को

देखकर आश्चर्य होता है कि इन्होंने कैसे अकेले इतनी अधिक साहित्यिक रचनाएँ कर लीं। इनकी प्रमुख कृतियाँ इस प्रकार हैं –

1. विसुद्धिमग्ग, 2. समन्तवासादिका, 3. कंखावितरिणी, 4. सुमंग्मा–विलासिनी, 5. पपञ्चसूदनी, 6. सारत्थप्रकासिनी, 7. मनोरथपूर्णा, 8. मरमत्थ जोतिका, 9. अट्ठसालिनी, 10. सम्मोहविनोदिनी, 11–15. पञ्चप्यकारणट्टकथा, 16. जातकट्टवण्णना, 17. धम्मपट्टकथा एवं 18. ज्ञानोदय आदि।

इनमें से प्रथम और अन्तिम के अतिरिक्त शेष सभी किसी न किसी ग्रन्थ की अट्ठकथायें हैं।

बुद्धदत्त भी बुद्धघोष के समकालिक हैं। इन्होंने भी उत्तरविनिच्छय, विनय विनिच्छय, अभिधम्मावतार, रूपारूपविभाग, और मधुरत्थविलासिनी नामक पॉच अट्ठकथायें लिखीं हैं –

तीसरे अट्ठकथाकर धम्मपाल की रचनाएं अधोलिखित हैं–

1. परमत्थदीपनी – खुद्दक निकाय के उन ग्रन्थों की अट्ठकथाएं हैं जिनपर बुद्ध घोष ने अट्ठकथा नहीं लिखी है।
2. तेत्तिपकरणट्ठकथा या तेत्तियपकरणस्स अत्थवण्णना
3. तेत्तित्थकथाय टीका या लीनत्थवण्णना
4. परमत्थमंजूसा या महाटीका
5. लीनत्थपकासिनी
6. जातकट्ठकथाटीका
7. बुद्धदत्त कृत मधुरत्थविलासिनी की टीका

उपर्युक्त अट्ठकथाकारों के अतिरिक्त आनन्द, चुल्लधम्मपाल, उपसेन, महानाम आदि ने भी अट्ठकथायें लिखी हैं। आचार्य अनिरूद्ध ने 'अभिधम्मत्थ संग्रह' नामक ग्रन्थ लिखा है जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

नेत्तिपकरण– नेत्तिपकरण का संक्षिप्त नाम 'नेत्ति' भी है, इसे नेत्तिगन्ध (ग्रन्थ) भी कहते हैं। 'नेत्ति' का अर्थ है – 'मार्गदर्शिका' । जो सम्बन्ध 'निरूक्त' का वेदों से है वही सम्बन्ध नेत्तिपकरण का त्रिपिटकों से है। नेत्तिपकरण की रचना का प्रयोजन है त्रिपिटकों के (बुद्धवचनों के) तात्पर्य निर्णयों या युक्तियों का शास्त्रीय विवेचन करना।

मिलिन्दपञ्हो – यह ग्रन्थ पालिवाङ्मय में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस ग्रन्थ के नाम की तीन वर्तनियां प्रचलित हैं – मिलिन्दपञ्ह, मिलिन्दपञ्हा और मिलिन्दपञ्हो। आचार्य बुद्धघोष ने इस ग्रन्थ का समादर करते हुए

अट्ठकथाओं में अनेक उद्धरण इससे दिये हैं । ग्रीक राजा मिनैण्डर को 'मिलिन्द' कहा गया है और उनके साथ मदन्त नागसेन के संवाद के रूप में यह ग्रन्थ लिखा गया है। यह संवाद ऐतिहासिक है और पूरा ग्रन्थ सात भागों में विभक्त है – ग्रन्थ की भूमिका है 'बहिरकथा', अनात्मवाद के साथ पुनर्जन्मवाद की संगति है 'लक्खणपञ्हो' , राजा मिलिन्द को संशयों का निवारण है – 'विमतिच्छेदनपञ्हो', त्रिपिटक के परस्पर विरोधी प्रश्नों का समाधान है – 'विमतिच्छेदनापञ्हो', त्रिपिटक के परस्पर विरोधी प्रश्नों का समाधान है – 'मेण्डकपञ्हो' । यह ग्रन्थ का सबसे बड़ा भाग है। भगवान् बुद्ध के कार्यों के आधार पर उनकी सत्ता सिद्ध करता है 'अनुमानपञ्हों' । इस भाग में 'धम्मनगर' का निरूपण अत्यन्त प्रभावशाली है। तेरह अवधूत नियमों का वर्णन है – 'धुतङ्गकथा' । इसमें भौतिक प्रपंचों में फँसे हुए गृहस्थ द्वारा भी शान्त निर्वाण पद प्राप्त करने का विश्वास दिलाया गया है। सातवें और अन्तिम भाग 'ओपम्मकथापञ्हो' में अर्हत्व का साक्षात्कार करने के इच्छुक व्यक्ति को किस प्रकार किन–किन गुणों का सम्पादन करना चाहिए। यह विविध उपमाओं के द्वारा बताया गया है।

वंश साहित्य – संस्कृत में पुराणों के समान पालि में 'वंश' ग्रन्थों की रचना हुई है। इन वंश ग्रन्थों में पुराणों की अपेक्षा ऐतिहासिक तथ्यों की स्पष्टता कुछ अधिक ही है। वंशग्रन्थों में तत्कालीन राजाओं के वंशों का ही मुख्यतया वर्णन है। कुछ प्रसिद्ध वंश ग्रन्थ इस प्रकार हैं– 1. दीपवंस, 2. महावंश, 3. चूलवंस, 4. महाबोधिवंस, 5. बुद्धघोसुप्पत्ति वंस, 6. सद्धमसंगह, 7. थूपवंस, 8. अत्तनगलुविहारवंस, 9. दारावंस, 10. गन्ध वंस, 11. छकेसधातुवंस और 12. समानवंस आदि ।

काव्य साहित्य – संस्कृत और प्राकृत भाषा की तुलना में पालिभाषा में काव्यग्रन्थ नगण्य है। त्याग का उपदेश देने वाले बौद्धधर्म में अधिकांशतः धर्म–दर्शन का प्रतिपादन करने वाले ग्रन्थों की ही रचना हुई । त्रिपिटकों में काव्यतत्त्व दृष्टिगत होते हैं किन्तु आचार्यों में साहित्यिक अभिरूचि का अभाव था। फिर भी पालिभाषा में कुछ अवश्य उपलब्ध है। यथा– अनागतवंस, तेलकराहकथा, निजचरित, जिनालङ्कार, पजमधु, सद्धम्मोपायन, पञ्चगतिदीपन, लोकघदीपसार के अतिरिक्त कुछ आख्यान कथा ग्रन्थ हैं – रसवाहिनी, बुद्धालंकार, सहस्सवत्थुप्पकरण और राजाधिराजविलासिनी।

सिंहली भिक्षु संघरक्षित ने 'वुत्तोदय' नामक छन्दःशास्त्र का एक ग्रन्थ लिखा है और एक काव्य शास्त्रीय ग्रन्थ 'सुबोधालंकार' भी लिखा है।

1.5 पालि–व्याकरण

प्रथमतः भाषा और फिर व्याकरण । पालिभाषा का व्याकरण अपेक्षाकृत बहुत बाद में निर्मित हुआ। वर्तमान काल में पालि के प्रमुख तीन व्याकरण

उपलब्ध हैं – **कच्चायन या कच्चान व्याकरण,मोग्गलान व्याकरण और सद्दनीति।** इन व्याकरणों का जो पूरक अथवा उपकारी साहित्य लिखा गया, उस पर भी पाणिनि व्याकरण और कातन्त्र व्याकरण का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

कच्चायन व्याकरण – पालिभाषा के उपलब्ध व्याकरणों में कच्चायन या कच्चान व्याकरण सर्वप्राचीन और महत्त्वपूर्ण है। इसे 'सुसन्धिकप्प' भी कहते हैं। ऐसी मान्यता है कि भगवान् बुद्ध के प्रमुख अस्सी शिष्यों में से एक, महाकच्चायन ने इस व्याकरण का निर्माण किया था। इस व्याकरण ग्रन्थ में चार कप्प और तेईस परिच्छेद हैं। सन्धिकप्प, नामकप्प, आख्यातकप्प और किब्बिधानकप्प – ये चार कप्प हैं । संधि कप्प में ही संज्ञा विधान अन्तर्भूत है। नामकप्प कण्डों में विभक्त है। इसमें कारक, समास और तद्धित विशेष रूप से हैं। उभादिकप्प, किब्बिधानकप्प में ही रखा गया है।

कच्चायन व्याकरण सम्प्रदाय में अनेक ग्रन्थ, टीकाएं आदि लिखी गयी। इन सब पर पाणिनि व्याकरण का प्रभाव है।

मोग्गलान व्याकरण – इस व्याकरण की रचना आचार्य मोग्गलान ने की है। इसमें कुल 817 सूत्र हैं। इन सूत्रों पर वृत्ति भी भोग्गलान ने लिखी है। इसके परिशिष्ट भाग में धातुपाठ, गणपाठ तथा उपादिवृत्ति का भी संकलन है। इस व्याकरण सम्प्रदाय में भी कुछ अन्य ग्रन्थ निर्मित है।

सद्दनीति – यह पालि व्याकरण मूलतः ब्रह्मदेश (बर्मा) में 1154 ई. में निर्मित हुआ। इसके निर्माता बर्मी भिक्षु भग्गवंस थे जिनकी प्रसिद्धि 'अग्गपंडित ततिय' के रूप में अधिक थी। श्रीलंका के पालिविदों ने इस व्याकरण को प्राप्त किया। यह 'सद्दनीति' मूलतः कच्चायन व्याकरण का उपजीवी है। सद्दनीति के तीन विभाग हैं – पदमाला, धातुमाला और सुत्तमाला। कुल मिलाकर सत्ताइस अध्याय हैं जिनमें से प्रथम अट्ठारह अध्याय 'चूलसद्दनीति' कहे जाते हैं।

इन तीनों व्याकरणों के अतिरिक्त कुछ अन्य भी सामान्य कोटि के व्याकरण ग्रन्थ हैं।

अभिधानप्पदीपिका (मोग्गलानकृत) और 'एकक्खरकोस' (सद्धम्मकित्ति कृत) नामक दो पालिकोश भी मिलते हैं।

1.5.1 वर्णमाला

1. पालि भाषा में 'अ' आदि 43 (तैंसालीस) वर्ण हैं –'अ आदया तितालिस वण्णा' (मो. 1.1)

2. वर्णमाला के प्रारम्भिक दस वर्ण 'स्वर' हैं –**'दसादो सरा' (मो. 1.2)** । ये दस स्वर वर्ण हैं – अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ । **इनमें से समीपवर्ती**

दो –दो स्वर 'सवर्ण' कहे जाते हैं– 'द्वे द्वे सवण्णा' (मो. 1.3)। अर्थात् अ और आ, इ और ई, उ और ऊ, ए और ऐ तथा ओ और औ – परस्पर सवर्ण हैं। ये वर्ण क्रमशः ह्रस्व और दीर्घ होते हैं।

3. 'क' आदि तैंतीस वर्ण 'व्याञ्जन' कहे जाते हैं – 'कादयो व्यञ्जना' (मो. 1.6) कादि तैंतीस वर्ण अधोलिखित हैं –

क	ख	ग	घ	ङ
च	छ	ज	झ	ञ
ट	ठ	ड	ढ	ण
त	थ	द	ध	न
प	फ	ब	भ	म
य	र	ल	व	स	ह	ळ	अं।

'क' एक वैदिक व्यञ्जन पालिभाषा में प्राप्त है किन्तु संस्कृत (लौकिक) भाषा में यह अनुपलब्ध है।

4. 'अं' (अनुस्वार) की गणना व्यञ्जनवर्ण में है और इसे पालिभाषा में 'निग्गहीत' कहते हैं – 'बिन्दु निग्गहीतं' (मो. 1.8) ।

5. पालि भाषा में ' : ' (विसर्ग) का अभाव है। विसर्ग के स्थान पर 'ओ' रहता है।

6. संस्कृत के स्वरों का पालि के स्वरों में परिवर्तन अनियमित होता है। इन परिवर्तनों का स्वरूप निश्चित करना असम्भव प्राय है। उदाहरण के लिए संस्कृत के 'अ' स्वर का पालि के विभिन्न स्वरों में परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है –

अ	> आ	प्रत्यमित्रं	=	पच्चामित्तो
	> इ	राजस्त्री	=	राजित्थि
	> उ	निमज्जति	=	निमुज्जति
	> ए	फल्गु	=	फेल्गु

इसी प्रकार अन्य स्वरों के परिवर्तन में भी विचलन दृष्टिगोचर होता है।

7. व्यञ्जनों के परिवर्तन भी इसी प्रकार अनियमित होते हैं। यथा –

क	> ग	मूकः	=	मूगो
	> ट	कक्कोलं=		टक्कोलं
	> क्क	भिषक्	=	भिसक्को
	> य	स्वकं	=	स्वयं

> व लकुचं = लवुजं इत्यादि ।

कभी–कभी रेक ' ' को अनुस्वार (निग्गहीत) हो जाता है –

अकार्षुः = अकंसु

संयुक्त व्यञ्जनों के परिवर्तन भी नितान्त अनियमित होते हैं । कहीं–कहीं स्वरभक्ति (सरभत्ति) का नियम लागू होता है। यथा –

धर्मः = धम्मो , कर्म = कम्म

क्षुद्रः = छुद्दो , पक्षः = पक्खो

अस्तः = अत्तो षष्ठः = सट्ठो इत्यादि

कहीं प्रारम्भिक वर्ण का लोप भी हो जाता है। यथा –

स्थानं = ठानं , प्रस्थाय = पट्ठाय

स्पन्दः = फन्दो , स्फटिकः = फटिको इत्यादि ।

1.5.2 सन्धि

पालि भाषा में सन्धि की व्यवस्था वैकल्पिक है। सन्धि तीन प्रकार की होती है – 1. स्वर सन्धि 2. व्यञ्जन सन्धि और 3. निग्गहीत सन्धि

स्वर सन्धि

1. **सरोलोपो सरे** (मो.1.26) । यदि स्वर से परे स्वर हो तो कभी–कभी पूर्व स्वर का लोप हो जाता है। यथा –

तत्र + इमे = तत्रिमे, तत्रेमे ।

यस्य + इन्द्रियानि = यस्सिन्द्रियानि, यस्सेन्द्रियानि ।

2. **परो क्वचि** (मो. 1.27) । स्वर से परे स्वर रहने पर कभी कभी परवर्ती स्वर का लोप हो जाता है। यथा –

सो + अपि = सोपि, सोऽपि ।

सा + एव = साव, सैव ।

ते + अहं = तेहं, ते अहं ।

3. **न द्वे वा** (मो. 1.28) । स्वर से परे स्वर रहने पर, कभी–कभी दोनों स्वरों में से किसी का भी लोप नहीं होता । यथा –

लता + इव = लता इव (विकल्प से 'लताव', 'लतेव')

4. युवण्णानमेओ लुत्ता (मो. 1.29) । लुप्त हुए स्वर से परे, कभी–कभी 'इ' का 'ए' और 'उ' का 'ओ' हो जाता है। यथा –

तस्स + इदं = तस्स् + इदं = तस्स् एदं = तस्सेदं

वात + ईरितं = वातेरितं ।

वाम + उरू = वामोरू ।

5. यवासरे (मो. 1.30) । 'इ' तथा 'उ' से परे असमान स्वर होने पर उनका क्रमशः 'य' और 'व' हो जाता है। यथा –

वि + अञ्जनं = व्यञ्जनं ।

सु + आगतं = स्वागतं ।

6. ए ओ नं (मो. 1.31) । इसी प्रकार 'ए' और 'ओ' के परे स्वर आने पर क्रमशः 'य' और 'व' हो जाता है। यथा –

ते + अज्ज = त्यज्ज ।

स्पे + अहं = स्वाहं ('व्यञ्जने दीधरस्सा' से दीर्घ)।

7. गोस्सावङ (मो. 1.32) । 'गो' शब्द के पश्चात् स्वर आने पर 'गो' का 'गव' आदेश हो जाता है। यथा –

गो + अस्सं = गव + अस्सं = गवास्सं ।

व्यञ्जन सन्धि

8. व्यञ्जने दीघरस्सा (मो. 1.33)। परे व्यञ्जन होने पर, प्रायः पूर्व स्थित ह्रस्व या दीर्घ स्वर का क्रमशः दीर्घ या ह्रस्व हो जाता है।

यथा – तत्र + अयं=तत्र + यं ('परो क्वचि' सूत्र से पर स्वर का लोप)

= तत्रायं

मुनि + चरे = मुनी चरे

सम्मा + एव =सम्मदेव (वनतरगाचागमा – मो. 1.45 से स्वर से पूर्व 'द' का आगम)

सम्म + धम्मो = सम्मा धम्मो ।

9. सरम्हा द्वे (मो. 1.34) । यदि स्वर से परे व्यञ्जन हो तो कभी–कभी उस व्यञ्जन काद्वित्व हो जाता है। यथा –

प + गहो = पग्गहो ।

इध + पमादो = इधप्पमादो ।

यत्र + ठितं = यत्रट्ठितं ।

10. चतुत्थदुतिये स्वे संततिय पठमा (मो. 1.35)। यदि किसी वर्ग के चतुर्थ या द्वितीय वर्ण संयुक्त हों तो उसी वर्ग का क्रमशः तृतीय या प्रथम वर्ण हो जाता है। यथा –

नि + घोसो = निघ्घोसो ('सरम्हा द्वे' – मो. 1.34 से)।

= निग्घोसो ।

अ + खन्ति = अख्खन्ति = अक्खन्ति।

अ + फुटं = अप्फुटं = अप्फुटं ।

11. वितिस्से वेवा (मो. 1.36) । 'इति' शब्द के पश्चात् यदि 'एव' शब्द हो तो 'इति' का विकल्प से 'इत्व' आदेश हो जाता है। यथा –

इति + एव = इत्वेव ।

12. ए ओ नम वण्णे (मो. 1.37) । 'ए' तथा 'ओ' के बाद यदि कोई भी वर्ण हो तो उन दोनों का कहीं–कहीं 'अ' हो जाता है । यथा –

सो + सीलवा = स सीलवा ।

एसो + धम्मो = एस धम्मो ।

निग्गहीत (अनुस्वार) सन्धि

13. निग्गहीतं (मो. 1.38) । कहीं–कहीं निग्गहीत (ं) का आगम हो जाता है । यथा –

चक्खु + उदपादि = चक्खुं उदपादि ।

त + रवणे = तं रवणे ।

त + सभावो = तं सभावो।

14. लोपो (मो. 1.39) । कहीं–कहीं निग्गहीत का लोप हो जाता है। यथा–

बुद्धानं + सासनं = बुद्धान सासनं

गन्तुं + कामो = गन्तु कामो ।

15. परसरस्स (मो. 1.40) । निग्गहीत से परे आने वाले स्वर का कभी–कभी लोप हो जाता है। यथा –

त्वं + असि = त्वंसि ।

इदं + अपि = इदंपि ।

16. वग्गे वग्गन्तो (मो. 1.41) । निग्गहीत से परे किसी वर्ग का वर्ण रहने पर निग्गहीत विकल्प से उस वर्ग के अन्तिम वर्ण में परिणत हो जाता है। यथा–

तं + करोति = तङ्करोति ।

तं + चरति = तञ्चरति ।

तं + ठानं = तण्ठानं ।

तं + धनं = तन्धनं ।

तं + पाति = तम्पाति ।

17. येवहिसु ञ्ञो (मों. 1.42) । निग्गहीत के बाद आये हुए 'य', 'एव' और 'ह' शब्दों के योग में निग्गहीत का कभी कभी 'ञ्ञ' हो जाता है। यथा–

यं + एव = यञ्ञदेव ।

तं + एव = तञ्ञव ।

तं + हि = तञ्ञहि ।

18. ये संस्स (मो. 1.43) । यदि 'य' परे हो तो पूर्वस्थित 'सं' शब्द के निग्गहीत का 'ञ' हो जाता है । यथा –

सं + यमो = सञ्ञमो।

19. मयदा सरे (मो. 1.44) । स्वर परे रहने पर, पूर्व स्थित निग्गहीत का 'म', 'य' और 'द' आदेश हो जाता है। यथा –

तं + अहं = तमहं ।

तं + इदं = तयिदं ।

तं + अलं = तदलं ।

20. संयोगादिलोपो (मो. 1.53) । कभी–कभी संयोग के आदिभूत अवयव का लोप हो जाता है। यथा –

पुप्फं + अस्सा = पुप्फंसा (आदिभूत अवयव 'अस्' का लोप)

जायते + अग्गिनि = जायते गिनि (आदिभूत अवयव 'अग्' का लोप)

1.5.3 समास

समास की व्यवस्था संस्कृत की ही तरह प्रायः पालिभाषा में भी है।

(क) अव्ययीभाव समास

1. असंख्यं विभत्तिसम्पत्ति समीप साकल्पाभावयथापच्छायुगपदत्थे (मो. 3.2)।

विभत्ति, सम्पत्ति, समीप, साकल्प, अभाव, यथा, पश्चात्, और युगपद् – इन अर्थों में अव्यय के साथ समास होता है। यथा –

नगरस्य समीपं = उपनगरं । (समीप)

मक्खिकानं अभावो = निम्माक्खिकं । (अभाव)

रथस्स पच्छा = अनुरथं (पश्चात्) । इत्यादि ।

2. यावावधारणे (मो. 3.4) । अवधारणा (इतना) अर्थ में 'याव' (यावत्) शब्द के साथ समास होता है। यथा –

जीवस्स यत्तको परिच्छेदो = यावजीवं (अवधारणा)।

3. ओरेपरिपटिपारेमज्झेट्ठुद्धाधोन्तो वा छट्ठिया (मो. 3.8)। ओरे, उपरि, परि,पारे, मज्झे, हेट्ठा, उद्ध, अधो और अन्तो – इन शब्दो का षष्ठ्यन्त के साथ समास होता है। यथा –

गङ्गाय ओरे = ओरेगङ्ग ।

सिखरस्स उपरि = उपरिसिखरं ।

यमुनाय पारे = पारेयमुनं ।

पासादस्स अन्तो = अन्तो पासादं । इत्यादि ।

(ख) तप्पुरिस समास

4. अमादि (मो. 3.10) । 'अं' आदि स्याद्यन्त शब्दों का स्याधन्त के साथ तप्पुरिस (तत्पुरूष) समास होता है। यथा –

गामं गतो = गामगतो।

कम्मधारय

5. विसेसनमेकत्थेन (मो. 3.11) । स्याधन्त विशेषण का अपने स्याधन्त विशेष्य के साथ समास होता है। यथा –

नीलञ्च तं उप्पलं = नीलुप्पलं

नञ्

6. नञ् (मो. 3.12) । 'न' के साथ स्याधन्त का समास होता है। यथा –

न मोघो = अमोघो ।

दिगु

7. संख्यादि (मो. 3.21) । यदि आदि में संख्यावाचक शब्द हो तो नपुंसक लिङ्गान्त समाहार समास होता है। यथा –

पञ्चन्नं गुन्नं समाहारो = पञ्चगतं ।

(ग) बहुब्बीहि समास

8. वानेकञ्ञत्थे (मो. 3.17) । अनेक स्याधन्त शब्दों का समास होकर उनसे भिन्न एक अन्य पद का बोध होता है। यथा –

जितानि इन्द्रियानि येन सो = जितिन्द्रियो ।

न अत्थि भयं रास्स सो = अभयं

चन्दो तिय मुखं यस्सा सा = चन्दमुखी ।

लम्बा कण्णा यस्य सो = लम्बकण्णो ।

(घ) द्वन्द समास

...थ (मो. 3.19) । दो या दो से अधिक स्याधन्त शब्दों का 'और' के

अर्थ में समास होता है। यथा –

चक्खु च सोतं च = चक्खुसोतं

समणो च ब्राह्मणे च = समणब्राह्मणा । इत्यादि ।

1.5.4 कारक (विभक्त्यर्थ)

कारक की भी व्यवस्था पालि में संस्कृत के प्रायः समान ही है।

(क) पठमा विभत्ति

1. पठमात्थमत्ते (मो. 2.39) । केवल अर्थ प्रकट करने अथवा कर्तृवाच्य के कर्ता में प्रथमा विभक्ति होती है। यथा –

समणो झापति (श्रमण ध्यान लगाता है)।

(ख) दुतिया विभत्ति

2. कम्मे दुतिया (मो. 2.21) । कर्तृवाच्य के कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है। यथा –

पुरिसो ओदनं पचति (पुरूष चावल पकाता है)।

3. कालद्धानमच्चन्तसंयोगे (मो. 2.3) । क्रिया, गुण और द्रव्य के लगातार होने पर, समय तथा दूरी वाचक शब्द में द्वितीय विभक्ति होती है। यथा –

1. समणो मासं विनयं पठति (श्रमण महीना भर लगातार) विनय (पिटक) पढ़ता है।

2. दिवसं गेहो सुञ्ञो तिट्ठति (घर दिनभर सूना रहता है)

3. मासं गुलधाना (महीने भर गुड़ लाई चलती है)

4. कोसं कुटिला नदी (नदी कोस भर टेढ़ी है)।

5. कोसं पब्बते (कोस भर पहाड़ (लगातार) पड़ता है)।

4. ध्यादीहि युत्ता (मो. 2.9)। धिक्, हा, अन्तरा, अन्तरेन, अभितो, उभयतो, परितो, सब्बतो – शब्दो के योग में दुतिया विभत्ति होती है। यथा–

धि अलसं सिस्सं (आलसी शिष्य को धिक्कार है)।

हा पुत्तं (हाय, बेटा)।

अन्तरा च राजगहं नालन्दं च (राजगृह और नालन्दा के बीच) राजानं अन्तरेन पासादं न सोभति (राजा के बिना महल अच्छा नहीं लगता)।

तलाकं अभितो उभयतो वा दीघा रूक्खा तिट्ठन्ति (तालाब के दोनो ओर लम्बे लम्बे वृक्ष हैं)।

गामं परितो सब्बतो वा पब्बतो (गांव के चारों कोर पर्वत हैं)।

5. रिते दुतिया च विनाञ्ञत्र ततिया च (मो. 2.31–32)। रिते (ऋते), बिना और अञ्ञत्र (अन्यत्र) के योग में द्वितीय तथा तृतीया विभक्ति होती है। यथा–

सद्धर्मं रिते अञ्ञो को जने रक्खति? (सद्धर्म के अतिरिक्त और कौन मनुष्यों की रक्षा कर सकता है?)

जलं जलेन का बिना रूक्खो सुक्खति (जल के बिना पेड़ सूखता है)

तथागतं अञ्ञत्र को अञ्ञों लोकनायको? (तथागत = बुद्ध को छोड़ कर अन्य कौन लोक को सही मार्ग पर ले चलने वाला है?)

(ग) ततिया विभत्ति

6. कत्तुकरणेसु ततिया (मो. 2.18)। भाववाच्य और कर्मवाच्य के कर्ता में, करण कारण में तथा क्रिया विशेषण में तृतीया विभक्ति होती है। यथा–

पुरिसेन गम्मति = मनुष्य के द्वारा चला जाता है।

बालकेन चन्दो दिस्सति = बालक के द्वारा चन्द्रमा देखा जाता है।

(करण कारक) दण्डेन सघं पहरति = डण्डे से सर्प मारता है।

(क्रिया विशेषण) गोत्तेन गोतमो = गोत्र से गौतम है।

7. सहत्थेन (मो. 2.19)। साथ होने के अर्थ में तृतीया विभक्ति होती है।

यथा – आचरियो सिस्सेन सह = समं = सद्धिं आगच्छति (आचार्य शिष्यों के साथ आते हैं)।

8. तुल्यत्थेन वा ततिया (मों. 2.42)। 'तुल्य' अर्थ में तृतीया विभक्ति होती है। कभी–कभी षष्ठी भी होती है। यथा –

आचरियेन आचरियस्स वा सदिसो सिस्सो (आचार्य जैसा ही शिष्य है)। जनकेन जनकस्स तुल्यो पुत्तो (पिता के समान पुत्र है)।

9. हेतुम्हि (मों. 2.21)। हेतु–अर्थ में तृतीया विभक्ति होती है। यथा – सो इध अन्नेन वसति (वह यहाँ खाने के उद्देश्य से रहता है)। धम्मेन यसो वड्ढति (धर्म से यश बढ़ता है)।

(घ) चतुत्थी विभत्ति

10. चतुत्थी सम्पदाने (मो. 2.26)। सम्प्रदान में चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा– याचकस्स भिक्खं ददाति (याचकों को भिक्षा देता है) ।

ब्राह्मणानं वत्थं ददाति (ब्राह्मणों को वस्त्र देता है)।

11. तादत्थे (मो. 2.27)। 'उसके लिए' के अर्थ में चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा – लोकहिताय बुद्धो धम्मं देसेति (लोकहित के लिए बुद्ध धर्म का उपदेश करते हैं)।

बालकानं मोदकं रूच्चति (बच्चों को लड्डू प्रिय लगता है)।

(ङ) पञ्चमी विभत्ति

12. पञ्चम्यवधिस्मा (मो. 2.28)। अवधि वाचक शब्द में पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा – गामस्मा गच्छति (गॉव से जाता है)।

चोरस्मा भायति (चोर से डरता है)।

(च) छट्ठी विभत्ति

13. छट्ठी संबन्धे (मो. 2.41)। सम्बन्ध में षष्ठी विभक्ति होती है। यथा –

आचरियस्स पुत्तो (उराचार्य का पुत्र)। राजस्स पुरिसो (राजा का आदमी)।

14. यतो निद्धारणं (मो. 2.38)। जाति, गुण और क्रिया के आधार पर जहॉ अनेक में से एक का निर्धारण किया जाय, वहॉ षष्ठी अथवा सप्तमी विभक्ति होती है। यथा – मनुस्सानं मनुस्सेसु वा खत्तियो वीरो (मनुष्यों में क्षत्रिय वीर होते है)। कण्हा गावीनं गावीसु वा सम्पन्नखीरतमा (गायों में काली गाय अधिक दूध देने वाली होती है) दानानं दानेसु वा धम्मदानं सेट्ठं (दानों में धर्म दान श्रेष्ठ होता है)।

(छ) सत्तमी विभत्ति

15. सत्तम्याधारे (मो. 2.34)। आधार में सप्तमी विभक्ति होती है। यथा –

पब्बते तिट्ठति (पहाड़ पर रहता है)।

कुम्भे ओदनं पचति (हॉडी में चावल पकाता है)।

16. यब्भावो भावलक्खजं (मों. 2.36)। एक कार्य हो चुकने पर जहॉ दूसरे कार्य का होना जाना जाता है, वहॉ सप्तमी विभक्ति होती है। यथा – आचरिये आगते सिस्सा उट्ठहन्ति (आचार्य के आने पर शिष्य उठ खड़े होते है)।

1.5.5 कित् पच्चय (कृत् प्रत्यय)

(क) कृत्य

1. भावकम्मेसु तब्बानीया (मो. 5.27) । भाव वाच्य और कर्मवाच्य में, धातु से परे 'तब्ब' और 'अनीय' प्रत्यय होते हैं। यथा –

भाव में – मया हसितब्बं हसनीयं वा (मुझे हॅसना चाहिए)।

मया निसीदितब्बं निसीदिनीयं वा (मुझे बैठना चाहिए)।

कर्म में – करो मया कत्तब्बो करणीयो वा (मुझे चटाई बनानी चाहिए)।

तानि वचनानि मया सोतब्बानि सवनीयानि वा (वे वचन मुझे

सुनने चाहिए)।

2. ध्यण् (मों. 5.28) । भाव और कर्म में धातु से पर 'ध्यण्' प्रत्यय लगता है। 'ध्यण्' का केवल 'य' शेष रह जाता है।

यथा – मया इदं न वाच्यं (मुझे यह नहीं कहना चाहिए)।

सिस्सेन पुप्फानि (शिष्य को फूल चुनने चाहिए) ।

3. गुहादीहि यक् (मो. 5.32) । भाव और कर्म में 'गुह्' आदि धातुओं से 'यक्' प्रत्यय लगता है। 'यक्' का 'य' ही शेष रहता है।

यथा – गुह् + यक् = गुह्यो, गुह्या, गुह्यं ।

दुद् + यक् = दुह्यों, दुह्या, दुह्यं ।

(ख) कृत् 1. वर्तमान कालिक कृत्

4. न्तो कत्तारे वत्तमाने (मो. 5.64)। वर्तमान काल में 'करता हुआ' के अर्थ में धातु से परे 'न्त' प्रत्यय लगता है। यथा – तिट्ठन्तो (खड़ा होता हुआ), गच्छन्तो (जाता हुआ) ।

5. मानो (मों. 5.65) । वर्तमान काल में 'नत' के स्थान पर 'मानो' प्रत्यय भी आता है। यथा – तिट्ठमानो, गच्छमानो ।

2. भूतकालिक कृत्

6. कत्तारि भूते क्तवन्तक्तावी (मो. 5.55) भूतकाल के अर्थ में, धातु से परे 'क्तवन्तु' और 'क्तावी' प्रत्यय होते हैं। यथा –

क्तवन्तु (तवन्तु) – विजितवान् = विजितवा (वि+जि+क्तवन्तु)

क्तावी (तावी) – विजितावी (वि + जि + क्तावी)

7. क्तो भावकम्मेसु (मो. 5.56) । भूतकाल के अर्थ में कर्म और भाववाच्य में धातु से परे 'क्तो' (क्त) प्रत्यय होता है।

यथा – वि + जि + क्तो = विजितो, विजितं, विजिता ।

कर्मवाच्य में ये रूप तीनों लिंगों में होते हैं किन्तु भाववाच्य में केवल नपुंसक लिंग में होते हैं। यथा – विजिते पुरिसो, विजिता इत्थी, विजितं रज्जं। (कर्म वाच्य) मया हसितं. मया सुत्तं (भाववा.)।

3. भविष्यत्कालित कृत्

8. तेस्सपुब्बानागते (मो. 5.67)। वर्तमान काल के 'न्तो' और 'मानो' प्रत्ययों पचिस्सं, पचिस्सन्तो। पचिस्सन्तो, पचिस्समाणो।

4. पूर्वकालिक कृत्

9. पुब्बेक कत्तुकानं (मो. 5.63) । एक ही कर्ता के साथ दो क्रियाओं का

योग होने पर, पहली क्रिया के धातु से परे, विकल्प से 'तून', 'क्त्वान' और 'क्त्वा' प्रत्यय होते हैं। यथा –

सोतून, सुत्वान, सुत्वा (सुनकर) । सो सोतून, सुत्वान,सुखा वा याति (वह सुनकर जाता है) ।

10. प्यो वा त्वास्स समासे (मो. 5.64) । समास होने की दशा में, धातु से परे 'त्वा' का विकल्प से 'प्य' आदेश हो जाता है। 'प्य' का 'य' ही शेष रहता है। यथा –

अभिभावित्वा – अभिभूय ।

( ) हेत्वर्थ कृत्

11. तुं तायें तवे भावे भविस्सति क्रियायं तदत्थायं (मो. 5.61) । 'इस कार्य के निमित्त' – अर्थ में धातु से परे विकल्प से 'तुं' 'तायें' और 'तवे' प्रत्यय होते हैं। यथा – सो कातुं, कत्तायें कातवे वा गच्छति ।

तद्धितप्पच्चय (तद्धित प्रत्यय)

1. तमेत्थस्सत्थीति मन्तु (मो. 4.78) । 'वाला' के अर्थ में पद (शब्द) से परे 'मन्तु' प्रत्यय होता है। यथा –

गोमन्तु (गायों वाला), गतिमन्तु (गतिवाला), सतिमन्तु (स्मृतिवाला)।

2. वन्त्ववण्णा (मो. 4.79) । अकार से परे 'मन्तु' के स्थान में 'वन्तु' होता है। यथा – सीलवन्तु (शीलवाला), पञ्ञवन्तु (प्रज्ञावाला)।

3. इमिया (मो. 4.94)। 'वाला' अर्थ में 'इम' और 'इय' प्रत्यय भी होते हैं।

यथा – पुत्तिमो, पुत्तियो (पुत्रवाला), कित्तिमो, कित्तियो (कीर्तिवाला),

4. किम्हानिद्धारणेरतर–रतमा (मो. 4.57)। अनेक में से एक का निर्धारण करने के प्रसंग में 'किं' शब्द से 'रतर' और 'रतम' प्रत्यय होते हैं। यथा– कतरो कतमो वा देवदत्तो भवतं (आप लोगों में से देवदत्त कौन है?)।

5. तरतमिस्मिकियिट्ठातिसये (मो. 4.64) । 'अतिशय' अर्थ को व्यक्त करने के लिए शब्द से परे 'तर' 'तम' 'इस्सिक' 'इय' और 'इट्ठ' प्रत्यय होता है। यथा – अतिसयेन पापो – पापतरो, पापतमो, पापिस्सको, पापियो पापिट्ठो (वा) अर्थात् अत्यन्त पापी।

6. तमधीते तं जानाति कणिका च (मो. 4.14) । 'उसे पढ़ता है' या उसे जानता है' – के अर्थ में शब्द से परे 'ण', 'क' तथा 'णिक' प्रत्यय होते हैं। यथा – व्याकरणं अधीते जानाति वा = वेय्याकरणो।

7. णो वा पच्चे (मो. 4.1) । 'अपत्य' अर्थ में नाम से परे 'ण' प्रत्यये होता

है। यथा – वसिट्ठस्स अपच्चं = वासिट्ठो । रघुनो = अपच्चं राघवो।

8. ण्य दिच्चादीहि (मो. 4.4) । अपत्थ अर्थ में 'दिति' आदि शब्दों से परे 'ण्य' प्रत्यय होता है। यथा – देच्चो = दिति का पुत्र (दैत्य)। अदिच्चो अदिति का पुत्र (आदित्य)।

9. णो (मो. 4.34)। 'यह इसका है' – इस अर्थ में शब्द से परे 'ण' प्रत्यय होता है। यथा – कच्चायनस्स इदं = कच्चायनं (व्याकरणं)

10. जनादीहि ता (मो. 4.69)। 'उसका समूह' – इस अर्थ में 'जन' आदि शब्दों से परे 'ता' प्रत्यय होता है। यथा – जनानं समूहो = जनता, गजानं समूहो = गजता।

11. मज्झादित्तिमो (मो. 4.24)। 'उसमें हुआ' – अर्थ में 'मज्झ' आदि शब्दों से परे 'इम' प्रत्यय होता है। यथा – मज्झिमो, अन्तिमो।

12. कण्णेय्यकंयिया (मो. 4.25) । 'उसमें हुआ' – अर्थ में शब्द से परे 'कण', 'पुय्य' 'णेय्यक', 'य' तथा 'इय' प्रत्यय होते हैं। यथा – कोसिनारको (कुसीनारा में हुआ), आरञ्ञको (अरण्य में हुआ), गंगेय्यो (गंगा में हुआ), गम्मो (गॉव में हुआ), गामियो (गॉव में हुआ)।

1.6 शब्द रूप

पालिभाषा में शब्दों के रूप संस्कृत भाषा के ही समान सुप् आदि प्रत्ययों के लगने से बनते हैं किन्तु कई दृष्टियों से रूपों में भिन्नता होती है। इस सन्दर्भ में पालिभाषा शब्दरूपों की कुछ अपनी विशेषताएं अधोलिखित हैं–

1. पालिभाषा में द्विवचन का अभाव है। अतः शब्दों के रूप एक वचन और बहुवचन में ही मिलते हैं।

2. ततिया और पंचमी विभत्ति के बहुवचन के रूपों में समानता होती है।

3. चतुत्थी और छट्ठी विभत्ति के बहुवचन के रूपों में समानता होती है।

4. संज्ञा के शब्द रूपों पर प्रायः सर्वनाम शब्द रूपों का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

5. व्यञ्जनान्त शब्दों के अन्तिम व्यञ्जन का लोप हो जाता है। यथा–
भगवान् – भगवा, इत्यादि ।

संज्ञा शब्द

अजन्त पुंल्लिङ्ग

1. अकारान्त शब्द 'बुद्ध'

प.	सब्बञ्ञू	सब्बञ्ञू, सब्ब्ञ्ञूनो
दु.	सब्बञ्ञुं	" "

शेष विभक्तियों के रूप 'कवि' शब्द के समान बनते हैं।

5. ऋकारान्त शब्द 'पितु' (पितृ)

विभक्ति	**एकवचन**	**बहुवचन**
प.	पिता	पितरो
दु.	पितरं, पितुं	पितरो, पितरे, पितू
त.	पितरा, पितुना	पितरेभि, पितरेहि, पितूभि, वितूहि
च.	पितु, पितुनो, पितुस्स	पितरानं, पितूनं, पितुन्नं
प.	पितरा, पितुना	पितरेभि, पितरेहि, पितूभि, पितूहि
छ.	पितु, पितुनो, पितुस्स	पितरानं, पितूनं, पितुन्नं
स.	पितरि	पितरेसु, पितूसु
आल.	पित, पिता	पितरो

6. ओकारान्त शब्द 'गो'

प.	गो	गवो, गावो
दु.	गवं, गावं	गवो, गावो
त.	गवेन, गावेन	गाभि, गोहि
च.	गवस्स, गावस्स	गवं, गोनं, गुन्नं
पं.	गवा, गवस्मा, गवम्हय, गावा, गावस्मा, गावम्हा	गोभि, गोहि
छ.	गवस्स, गावस्स	गवं, गोनं, गुन्नं
स.	गवे, गवास्मिं, गवम्हि, गावे, गाविस्मिं, गावम्हि	गवेसु, गावेसु, गोसु,
आल.	गो	गवो, गावो

अजन्त स्त्रीलिंग

1. आकारान्त शब्द 'लता'

प.	लता	लता, लतायो
दु.	लतं	लता, लतायो
त.	लताय	लताभि, लताहि
च.	लताय	लतानं

छ.	"	धेनूनं
स.	धेनुया, धेनुयं	धेनुसु
आल.	धेनु	धेनू, धेनुयो

5. ऊकारान्त शब्द 'वधू'

प.	वधू	वधू, वधुयो
दु.	वधुं	" "
त.	बधुया	वधूभि, वधूहि
च.	वधुया	वधूनं
पं.	वधुया	वधूभि, वधूहि
छ.	वधुया	वधूनं
स.	वधुया, वधुयं	वधुसु
विभत्ति	**एकवचन**	**बहुवचन**
आल.	वधू	वधू, वधुयो

अजन्त नपुंसकलिंग

1. अकारान्त शब्द 'चित्त'

प.	चित्तं	चित्ता, चित्तानि
दु.	चित्तं	चित्ते, चित्तानि
आल.	चित्तं	चित्ता, चित्तानि

शेष रूप 'बुद्ध' के समान होते हैं।

2. इकारान्त शब्द 'अक्खि' (अक्षि)

प.	अक्खि	अक्खी, अक्खीनि
दु.	अक्खिं	" "
आल.	अक्खि	" "

शेष रूप 'कवि' शब्द के समान होते हैं।

3. उकारान्त शब्द 'चक्खु' (चक्षु)

प.	चक्खु	चक्खू, चक्खूनि
दु.	चक्खुं	" "
आल.	चक्खु	" "

शेष रूप 'भिक्खु' शब्द के समान होते हैं।

छ.	रञ्ञो, राजिनों	रञ्ञं, राजानं, राजूनं
स.	रञ्ञे, राजनि, राजस्मिं, राजम्हि	राजेसु, राजूसु
आल.	राज, राजा	राजा, राजानों

4. नकारान्त शब्द 'अत्त' (आत्मन्)

प.	अत्ता	अत्ता, अत्तानो
दु.	अत्तं, अत्तानं	अत्ते, अत्तानो
त.	अत्तेन,अत्तना	अत्तेभि, अत्तेहि, अत्तनेभि, अत्तनेहि
च.	अत्तनो	अत्तानं
पं.	अत्तना, अत्तस्मा, अत्तम्हा	अत्तेभि, अत्तेहि, अत्तनेभि, अत्तनेहि
छ.	अत्तनो	अत्तानं
स.	अत्तनि	अत्तनेसु
आल.	अत्त, अत्ता	अत्तानो

हलन्त नपुंसकलिंग

सकारान्त शब्द 'मन' (मनस्)

प.	मनो, मनं	मना, मनानि
दु.	" "	मने, मनानि
त.	मनेन, मनसा	मनेभि, मनेहि
च.	मनस्स, मनसो	मनानं
पं.	मना, मनसा, मनस्मा, मनम्हा	मनेभि, मनेहि
छ.	मनस्स, मनसो	मनानं
स.	मने, मनसि, मनस्मिं, मनम्हि	मनेसु
आल.	मन, मना, मनं	मना, मनानि

सब्बनाम (सर्वनाम) शब्द

1. सब्ब (सर्व) पुंल्लिंग

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
प.	सब्बो	सब्बे
दु.	सब्बं	सब्बे
तं.	सब्बेन	सब्बेभि, सब्बेहि

स्त्रीलिंग

प.	सा	ता, तायो, ना, नयो
दु.	तं, नं.	" " " "
त.	ताय, नाय	ताभि, ताहि, नाभि, नाहि
च.	ताय, तस्साय, तिस्सा, तिस्साय	तासं, तासानं, नासं, नासानं
प.	ताय, नाय	ताभि, ताहि, नाभि, नाहि
छ.	ताय, नाय, तिस्सा, तिस्साय	तासं, तासानं, नासं, नासानं
स.	ताय, तायं, तिस्सं	तासु, नासु

'एत' (एतत्) पुल्लिंग

विभत्ति	एकवचन	बहुवचन
प.	एसो	एते
दु.	एतं, एनं	एते, एसे
त.	एतेन	एतेभि, एतेहि
च.	एतस्स	एतेसं, एतेसानं
पं.	एतस्मा, एतम्हा	एतेभि, एतेहि
छ.	एतस्स	एतेसं, एतेसानं
स.	एतस्मिं, एतम्हि	एतेसु

नपुसकलिग

प.	एतं	एते, एतानि
दु.	एतं	एते, एतानि

शेष रूप पुल्लिंगवत्

स्त्रीलिंग

प.	एसा	एता, एतायो
दु.	एतं	" "
त.	एताय	एताभि, एताहि
च.	एताय, एतिस्सा, एतिस्साय	एतासं, एतासानं
पं.	एताय	एताभि, एताहि
छ.	एताय, एतिस्सा, एतिस्साय	एतासे, एतासानं
स.	एतस्सं, एतिस्सं, एतासं	एतासु

1.7 धातु रूप

क्रिया के मूलरूप को 'धातु' कहते हैं। पालि भाषा में भी संस्कृत के ही समान धातुओं के गण हैं। धातु रूपों की कुछ मुख्य विशेषताएं अधोलिखित हैं –

1. यहॉ भी द्विवचन का अभाव है।
2. आत्मनेपद और परस्मैपद के बन्धन में शिथिलता दिखायी पड़ती है यथा – अवति = भवते, लभते = लभति ।
3. लुट और आशीलिंग लकारों का अभाव है। अतः आठ लकार ही हैं
4. लिट् लकार का भी विरल प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। लुङ् लकार का प्रयोग बहुततया दिखायी पड़ता है।
5. अन्य भागों की धातुओं के रूप भी भ्वमदे गण की धातुओं की ओर झुकाव रखते हैं।
6. अदादि, जुहोत्यादि और तुदाहि गणों का भ्वमदेगण में अन्तर्भाव हो गया है।
7. लङ् , लुङ् और लृङ् लकारों के धातु रूपों के प्रारम्भ में 'अ' का आगम विकल्प से होता है।

'भू' –धातु (होना)

परस्मैपद

लट् लकार (वत्तमाना)

	एकवचन	बहुवचन
पठम पुरिस (प्रथम पुरूष)	भवति, होति	भवन्ति, होन्ति
मज्झिम पुरिस (मध्यम पुरूष)	भवसि, होसि	भवथ, होथ
उत्तम पुरिस (उत्तम पुरूष)	भवामि,होमि	भवाम, होम

लिट् लकार (परोक्खा)

प.पु.	बभूव	बभूवु
म.पु.	बभूवे	बभूवित्थ
उ.पू.	बभूव	बभूविम्ह

लृट् लकार (भविस्सन्ति)

प.पु.	भविस्सति	भविस्सन्ति
म.पु.	भविस्ससि	भविस्सथ

उ.पु.	भविस्सामि	भविस्साम

लोट् लकार (पञ्चमी)

प.पु.	भवतु, होतु	भवन्तु, होन्तु
म.पु.	भव, भवाहि, होहि	भवथ, होथ
उ.पु.	भवामि, होमि	भवाम, होम

लङ् लकार (हियत्तनी)

विभत्ति	**एकवचन**	**बहुवचन**
प.पु.	अभवा, अभूवा	अभूवु,अहुवु, अहुवू
म.पु.	अभवो, अहुवो	अभवत्थ, अहुवत्थ
उ.पु.	अभव, अभवं, अहुवं	अभवम्ता, अहुवम्हा

विधिलिङ् लकार (सत्तमी)

प.पु.	भवेयय्य, भवे, हेय	भवेय्यु, हेयुं
म.पु.	भवेय्यासि, भवे, हेय्यासि	भवेय्याथ, हेय्याथ
उ.पु.	भवेय्यामि, भवे, हेय्यामि	भवेय्याम, हेय्याम

लुङ् लकार (अज्जतनी)

प.पु.	अभवि, अभवी, अहोसि, अहू	अभवु, अभविंसु, अहेसु, अहवुं
म.पु.	अभवो, अभवि, अहोसि	अभवित्थ, अहोसित्थ
उ.पु.	अभविं, अहोसिं, अहुं	अभविम्हा, अभविम्ह, अहोसिम्ह, अहेम्ह

लृङ् लकार (कालातिपत्ति)

प.पु.	अभविस्स, अभविस्सा	अभविस्संसु
म.पु.	अभविस्स, अभविस्से	अभविस्सथ
उ.पु.	अभविस्सं	अभविसम्हा, अभविस्सम्ह

पचं–धातु (पकाना)

परस्मैपद

लट् लकार

प.पु.	पचति	पचन्ति
म.पु.	पचसि	पचथ
विभत्ति	**एकवचन**	**बहुवचन**

उ.पु.	पचामि	पचाम

लिट् लकार

प.पु.	पचिस्सति	पचिस्सन्ति
म.पु.	पचिस्ससि	पचिस्सथ
उ.पु.	पचिस्सामि	पचिस्साम

लोट् लकार

प.पु.	पचतु	पचन्तु
म.पु.	पच, पचाहि	पचथ
उ.पु.	पचामि	पचाम

लङ् लकार

प.पु.	पचा, अपच, अपचा	अपचु, अपचू
म.पु.	अपचो	अपचित्थ, अपचुत्थ
उ.पु.	अपच	अपचिम्ह, अपचिम्हा, अपचुम्हा

विधिलिङ् लकार

प.पु.	पचे, पचेय्य	पचुं, पचेय्युं
म.पु.	पचे, पचेय्यासि	पचेय्याथ
उ.पु.	पचे, पचेय्यासि	पचेय्याम, पचेय्यामु

लुङ् लकार

प.पु.	पचि, पची, अपचि, अपची	पचुं,अपचुं, पचंसु, पचिंसु, अपचंसु, अपचिंस
म.पु.	पचि, पचो,अपचि, अपचो	पचित्थ,पचुत्थ, अपचित्थ, अपचुत्थ
उ.पु.	अपचि	पचिम्ह, पचिम्हा, पचुम्हा, अपचिम्ह, अपचिम्हा, अपचुम्हा

लृङ् लकार (कालाति पत्ति)

प.पु.	अपचिस्सा	अपचिस्संसु
म.पु.	अपचिस्से	अपचिस्सथ
उ.पु.	अपचिस्सं	अपचिस्सम्हा

प.पु.	पचते	पचन्ते
म.पु.	पचसे	पचम्हे
उ.पु.	पचे	पचाम्हे

लिट् लकार

प.पु.	पपचित्थ	पपचिरे
म.पु.	पपचित्थो	पपचिन्हो
उ.पु.	पपचि	पपचिम्हे

लृट् लकार

प.पु.	पचिस्सते	पचिस्सन्ते
म.पु.	पचिस्ससे	पचिसव्हे
उ.पु.	पचिस्सं	पचिस्साम्हे

लोट् लकार

प.पु.	पचतं	पचन्तं
म.पु.	पचस्सु	पचव्हो
उ.पु.	पचे	पचामसे

लङ् लकार

विभक्ति	**एकवचन**	**बहुवचन**
प.पु.	अपचत्थ	अपचत्थुं
म.पु.	अपचंसे	अपचव्हं
उ.पु.	अपच	अपचाम्हसे

विधिलिङ् लकार

प.पु.	पचेथ	पचेरं
म.पु.	पचेथो	पचेय्यव्हो
उ.पु.	पचेय्यं	पचेय्याम्हे

लुङ् लकार

प.पु.	पचा, अपचा, अपचित्थ	पचू, अपचू
म.पु.	पचसे, अपचसे	पचव्हं, अपचव्हं
उ.पु.	पच, पचं, अपच, अपचं	पचम्हे, अपचम्हे

लृङ् लकार (कालातिपत्ति)

प.पु.	अपचिस्सथ	अपयिस्सिंसु
म.पु.	अपचिस्ससे	अपचिस्सव्हे
उ.पु.	अपचिस्सं	अपचिस्साम्हसे

अस्–धातु (होना)

परस्मैपद

लट् लकार

प.पु.	अत्थि	सन्ति
म.पु.	असि	अत्थ
उ.पु.	अस्मि, अम्हि	अस्म, अम्ह

लोट् लकार

विभत्ति	**एकवचन**	**बहुवचन**
प.पु.	अत्थु	सन्तु
म.पु.	अहि	अत्थ
उ.पु.	अस्मिं, अम्हि	अस्म, अम्ह

विधिलिङ् लकार

प.पु.	अस्स, सिया	अस्सु, सियुँ
म.पु.	अस्स	अस्सथ
उ.पु.	अस्सं	अस्साम

लृट् लकार

प.पु.	असिस्सति	आसिस्सन्ति
म.पु.	आसिस्ससि	आसिस्सथ
उ.पु.	आसिस्सामि	आसिस्साम

लुङ् लकार

प.पु.	आसि	आसुं, आसिंसु
म.पु.	आसि	आसित्थ
उ.पु.	आसिं	आसिम्हा

सभी धातुओं के रूप प्रायः उपर्युक्त प्रकार से बनते हैं। ये धातुयें संस्कृत की मूलधातुयें जैसी ही हैं। कुछ का परिगणन इस प्रकार है –

1. **भ्वादिगण** – अच्च (पूजा करना) – अच्चति । अज्ज (कमाना –

अज्जति। अट (घूमना)– अटति । अद् (खाना) – अदति।

अव (रक्षा करना) – अवति । इक्ख (देखना)– इक्खति। एस (खोजना) – एसति। कंख (चाहना) – कंखति । कड्ढ (काढ़ना) – कड्ढति। कन्द (रोना) – कन्दति। कम्प (काँपना) – कम्पति । कीड (खेलना) –कीडति। गम (जाना)– गच्छति । चज (छोड़ना) – चजति । जल (जलना)–जलति। जि (जीतना)– जयति । जीव (जीना) – जीवति। ठा (रूकना)– तिट्ठति। तर (पार करना)– तरति। दह (जलाना) – दहति, डहति। दंस (डंसना) –दंसति। दा (देना) – दाति। दिस्स (देखना) –पस्सति। पा (पीना) – पिबति। ब्रू (बोलना)– ब्रवीति, ब्रूति, आह। इत्यादि।

2. **रूधादि गण** – कत् (काटना) – कन्तति। गह् (पकड़ना) – गव्हति। छिद् (छेदना) – छिन्दति। बध (बाँधना) – बन्धति। इसी प्रकार, भेद्, भुज्, मुच, युज्, रूध्, लिप्, सिच्, हिंस्, आदि।

3. **दिवादि गण** – कुध (क्रोध करना)– कुज्झति। कुप (कोप करना)– कुप्पति। गा (गाना)–गायति। घा (सूँघना) –घायति। इसी प्रकार, छिद, झा, दिव, नहा, बुध, युध, रूच, लुभ, सम, सिव, सुस, हन आदि ।

4. **तुदादिगण** – किर (छींटना)– किरति। खिप (फेंकना) – खिपति। नि+गिर (निगलना)– निगरति, तुद (पीड़ा पहुँचना) – तुदति। इसी प्रकार नुद, फुर, फुस, मुस, लिख, विद, विस, सुप आदि।

5. **ज्यादिगण** – अस (भोजन करना)– अस्नति । चि (चुनना) – चिनाति। ला (जानना)–जानाति। थु (प्रशंसा करना) – थुनाति। इसी प्रकार, धू, पु, लु, सि आदि ।

6. **क्यादि गण** – की (खरीदना) – किणाति। वु (ढकना)– वुणाति। सक (सकना)– सक्णाति। सु (सुनना)– सुणातिं इत्यादि।

7. **स्वादिगण** – सु (सुनना) – सुणोति। खी (क्षीण होना) – खिणोति। वु (ढकना)– वुणोति। गि (शब्द करना)– गिणोति । सक (सकना)–सक्णोति। पि+आप (प्राप्त करना)–पापुणोति ।

8. **तनादिगण** – तन (फैलाना)– तनोति। सक (सकना)– सक्कोति। वन (माँगना)– वनोति। मन (जानना) – मनोति । आप (पाना)–अप्पोति। कर (करना)–करोति।

9. **चुरादिगण** – चुर (चुराना)– चोरोति, चोरयति। अज्ज (कमाना)–अज्जेति, अज्जयति। ईर (हिलाना)–ईरेति, ईरयति। कण्ण (सुनना) – कण्णोति, कण्णयति। कथ (कहना) – कथेति, कथयति। वण्ण (प्रशंसा करना) – वण्णेति, वण्णयति।

इसी प्रकार कित्त, गण, गन्थ, चिन्त, चुण्ण, छड्ड, झप, पाल, पुस, पूज, तक्क, तोर, मन्त, तीर, दिस, वन्द आदि।

सारांश –

'पालि' शब्द की विभिन्न प्रकार से अनेक व्युत्पत्तियाँ की गयी हैं। 'पा रक्षणे' अथवा 'पाल रक्षणे' धातु से इस शब्द की व्युत्पत्ति करने से इस शब्द का अर्थ है – 'रक्षा करने वाला'। 'परियाय' शब्द से 'पालि' को आविष्कृत करने पर बुद्धवचन या बुद्धोपदेश के अर्थ में लेने पर, दोनों के समन्वय से, 'जिस भाषा में बुद्धवचन सुरक्षित हों, वह पालि है' – यह परिभाषित होता है।

संस्कृत के समान पालिभाषा में विभिन्न विषयों के सर्वाङ्गीण ग्रन्थों का निर्माण नहीं हुआ । पालिभाषा का अधिकांश वाङ्मय बौद्ध धर्म–दर्शन के ग्रन्थों से भरा है फिर भी मिलिन्दपञ्हो,दीपवंश आदि साहित्यग्रन्थ,'वुत्तोदय' जैसे छन्दःशास्त्र के ग्रन्थ और भोग्यलान तथा कच्चायन व्याकरण के ग्रन्थ भी पालिभाषा में निर्मित हुए।

सम्पूर्ण बुद्धवचनों को पाँच निकायों में विभक्त किया गया है –

1. दीघनिकाय, 2. मज्झिमनिकाय, 3. संयुक्त निकाय, 4. अंगुत्तर निकाय और खुद्दक निकाय। इन्हीं पांचों निकायों के अन्तर्गत बौद्धसाहित्य सुरक्षित है। पिटक और अनुपिटक के रूप में दो स्थूल विभाग भी हैं।

प्रश्न –

खण्ड क – निबन्धात्मक प्रश्न

1. 'पालि' शब्द की व्युत्पत्ति प्रदर्शित करते हुए पालिभाषा के आविर्भाव पर प्रकाश डालिए।
2. पिटक साहित्य का विवरण प्रस्तुत कीजिए।
3. निकायों का उल्लेख करते हुए किसी एक निकाय के ग्रन्थों का विवरण दीजिए।
4. पालिभाषा में निर्मित सम्प्रदायेत्तर साहित्य पर एक निबन्ध लिखिए।
5. पालि व्याकरण का सामान्य परिचय प्रस्तुत कीजिए।

खण्ड ख – टिप्पण्यात्मक प्रश्न

1. जातक साहित्य ।
2. थेरगाथा तथा थेरीगाथा।
3. सुत्तनिपात।
4. धम्मपद ।
5. अट्ठकथा।
6. मिलिन्दपञ्हो।

7. बुद्धघोष का पालि साहित्य को अवदान।

खण्ड ग – वस्तुनिष्ठात्मक प्रश्न

1. पालि वाङ्मय में निकायों की संख्या है –

   क. सात　　ख. पॉच

   ग. चार　　घ. तीन।

2. धम्मपद ——— के अन्तर्गत है –

   क. जातक　　ख. खुद्दक निकाय

   ग. मज्झिमनिकाय　　घ. दीपवंस।

3. धम्मपद में वर्गों की संख्या है –

   क. 26　　ख. 23

   ग. 27　　घ. 21

4. भगवान् बुद्ध के पूर्व जन्मों की कथायें हैं –

   क. थेरगाथा में　　ख. अट्ठकथा में

   ग. जातक में　　घ. चुल्लवग्ग में

5. 'लता' शब्द का दुतिया विभत्ति, एकवचन, में रूप बनता है –

   क. लतां　　ख. लतायं

   ग. लतायो,　　घ. लतं

'खण्ड ग' के प्रश्नों के सही उत्तर –

1. ख – पॉच,　2. ख – खुद्दकनिकाय,　3. क– 26

4. ग – जातक में　5. घ – लतं ।

इकाई– 2 पालिपाठ

2.1 बावेरुजातकं

अतीते वाराणसियं ब्रह्मदत्ते रज्जं कारेन्ते बोधिसत्तो मोरयोनियं निब्बत्तित्वा बुद्धिं अन्वाय सोभाग्गप्पत्तो अरञ्ञे विचरि । तदा एकच्चे वाणिजा दिसाकाकं गहेत्वा नावाय बावेरुरट्ठं आगमंसु । तस्मिं किर काले बावेरुट्ठे सकुणा नाम नत्थि। आगतागता रट्ठवासिनो तं कूपग्गे निसिन्नं दिस्वा – "पस्सथिमस्स छविवण्णं गलपरियोसानं मुखतुण्डकं मणिगुककसदिसानि अक्खीनिंति। काकं एवं पसंसित्वाते ते वाणिज के आहंसु – "इमें अय्यो सकुणं अम्हाकं देथ, अम्हाकं हि इमिना अत्थो तुम्हे अत्तनो रट्ठे अञ्ञे लभिस्सथा" ति। "तेन हि मूलेन गण्हथा" ति । "कहापणेन नो देथा" ति। "न देमा" ति। अनुपूब्बेन वड्ढेत्वा "सतेन देथा" ति वुत्ते "अम्हाकं एस।

संस्कृत रूपान्तर बावेरुजातकम्

अतीते वाराणस्यां ब्रह्मदत्ते राज्यं कुर्वति बोधिसत्त्वो मयूरयोन्यां निर्वृत्य बुद्धिमन्धित्य सौभाग्यप्राप्तोऽरण्ये व्यचरत् । तदैकत्याः वाणिजः दिक्काकं गृहीत्वा नावा बावेरुराष्ट्रमगमन् । तस्मिन् किल काले बावेरुराष्ट्रे शकुनाः नाम न सन्ति। आगतागता राष्ट्रवासिनस्तं कूपाग्रे निषण्णं दृष्ट्वा, 'पश्यतास्य छबिवर्णं गलपर्यवसानं मुखतुण्डकं मणिगोलक सदृशेऽक्षिणीति' काकमेवं प्रशस्य ते वणिजोऽवोचन् – "इममार्य' शकुनमस्मभ्यंददातु। अस्माकं ह्यनेनार्थो यूयमात्मनोराष्ट्रेऽन्यं लप्स्यध्वे।" तेनहि मूल्येन गृह्णीत' इति। 'कार्षापणेन नो दत्ते' ति। 'न दद्म' इति। आनुपूर्व्येण वर्धयित्वा, "शतेन दत्ते"त्युक्ते "अस्माकमेष बहूपकारः ।

हिन्दी भावानुवाद

बावेरु जातक

अतीतकाल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते हुए, बोधिसत्त्व मयूरयोनि में अवतरित होकर बुद्धि से युक्त (अच्छी समझवाला) होकर तथा सौभाग्य प्राप्त करके विचरण करते थे। तब (उसी समय) कुछ बनिये एक दिशा कौवे को लेकर नाव से बावेरुराष्ट्र (देश) गये। उन दिनों बावेरुदेश में कोई भी पक्षी न था। आते–जाते हुए (बावेरु) देशवासी उस कौवे को नाव की मस्तूल पर बैठा हुआ देखकर, "देखो तो भला इसका सुन्दर रंग, गले तक फैली हुई चोंच और गोलमणि की तरह ऑखें!" इस तरह कौवे की प्रशंसा करके उन्होंने बनियों से कहा – "हे आर्य! इस पक्षी को हमें दे दीजिए। इससे हमारा प्रयोजन है। (अर्थात् यह हमें चाहिए)। आप अपने देश में दूसरा पा

लेंगे। तो इसकी कीमत ले लीजिए। एक कार्षापण में हमें दे दीजिए। "नहीं देंगे" – इस प्रकार क्रमशः मूल्य बढ़ाकर "सौ में दे दीजिए" – ऐसा कहा। 'यह हम लोगों का बहुत उपकार होगा। बहूपकारो, तुम्हेहि पन सद्धिं मेत्ती होतू' ति। कहापणसतं गहेत्वा अदंसु । तेतं गहेत्वा सुवण्णपञ्जरे पक्खिपित्वा नानप्पकारेन मच्छमंसेन चे' व फलाफलेन च पटिजग्गिंस। अञ्ञेसं सकुणानं अविज्जमानट्ठाने दसहि असद्धम्मेहिसमन्नागतो काको लाभग्गयसग्गप्पत्तो अहोसि। पुनवारे ते वाणिजा एकं मयूरराजानं गहेत्वा यथा अच्छरासद्देन वस्सति पाणिप्पहारसद्देन नच्चति एवं सिक्खा पेत्वा बावेरुरट्ठं अगमंसु। सो महाजने सन्निपतिते नावाय धुरे तत्वा पक्खे विधूनित्वा मधुरस्सरं निच्छारेत्वा नच्चि। मनुस्सा तं दिस्वा सोमनस्सजाता – "एतं अय्यो सोभग्गप्पत्तं सुसिक्खितसकुणराजानं अम्हाकं देथा" ति आहंसु।

संस्कृत रूपान्तर

युष्माभिः पुनः सार्धं मैत्री भवत्वि" ति कार्षापणशतं गृहीत्वाऽदुः । तेतं गृहीत्वा सुवर्णपञ्जरे प्रक्षिप्य नानाप्रकारेण मत्स्यमांसेन चैव फलाफलेन च प्रत्यग्रहीषुः । अन्येषां शकुनानामविद्यमानस्थाने दशभिरसद्धर्मैः समन्वागतः काको लाभाग्रयशेऽग्रप्राप्तोऽभूत् । पुनर्वारं ते वणिजः एकं मयूरराजं गृहीत्वा यथाक्षरशब्देनवाश्यते, पाणिप्रहारशब्देन नृत्यत्येवं शिक्षयित्वा बावेरुराष्ट्रभगमन्। स महाजने सन्निपतिते नावा धुरि स्थित्वा पक्षौ विधूय मधुरस्वरं निःसार्य अनर्तीत्। मनुष्यास्तं दृष्ट्वा सौमनस्यजाताः – "एनमार्याः, प्राप्तसौभाग्यं सुशिक्षितं शकुनराजमस्मभ्यं दत्ते" व्यवोचन्।

हिन्दी भावानुवाद

और, "फिर आप लोगों से मित्रता (भी) हो जायगी।" सौ कार्षापण लेकर (उसे) दे दिया। वे उसे लेकर सोने के पिंजड़े में रखकर तरह–तरह के मछली,मांस और कन्दमूल–फल से उसका सत्कार करने लगे। (उस देश में) अन्य पक्षियों के न होने के कारण दस दोषों से युक्त (भी) वह कौवा लाभ (उत्तम भोज्य–पान) और खूब यश (प्रशंसा) प्राप्त करने लगा। अगली बार वे बनिये, एक मयूरराज को, जो अक्षर कहने पर बोले और ताली बजाने से नाचे– ऐसा सिखाकर बावेरुदेश लेकर गये। वह भारी भीड़ कइट्ठी होने पर, नाव की पतवार पर स्थित होकर पंख फैलाकर, मीठी आवाज करता हुआ नाचने लगा। वे लोग उसे (इस प्रकार का) देखकर प्रसन्न मन वाले हो गये और बोले – "आर्यो ! इस सौभाग्यशाली (अतीव सुन्दर) सुशिक्षित पक्षिराज को हमें दे दीजिये।" "अम्हेहि पठमं काको आनीतो, तं गण्हित्थ, इदानि एवं मोरराजानं आनायिम्ह, एतम्पि याचथ। तुम्हाकं रट्ठे सकुणं नाम गहेत्वा आगन्तुंनसक्का" ति। "होतु अय्यो,अत्तनो रट्ठे अञ्ञं लभिस्सथ, इमं नोदेथा"

ति मूलं वड्ढेत्वा सहस्सेन गण्हिंसु । अथ नं सत्तरतनविचित्ते पञ्जरे रुपेत्वा मच्छ मंसफलाफलेहि चे' व मधुलाजा सक्खरापानकादीहि च पटिजग्गिंसु। मयूर राजा लाभग्गयसग्गपत्तोजातो। तस्सागतकालतो पट्ठाय काकस्स लाभसक्कारो परिहायि कोचिनं आलोकितुं पि न इच्छि। काको खादनीयभोजनीयं अलभमानो 'काका' ति वस्सन्तों गन्त्वा उक्कारभूमिंयं ओतरि।

संस्कृत रूपान्तर

"अस्माभिः प्रथमं काक आनीतः, तमग्रहीष्टेदानीमेतं मयूरराजमानैषिष्म, एनमपि याचथ। युष्माकं राष्ट्रे शकुनं नाम गृहीत्वाऽऽगन्तुं न शक्यम्।" "भवत्वार्य, आत्मनोराष्ट्रेऽन्यं लप्स्यसे, इमं नो ददातु।" मूल्यं वर्धयित्वा सहस्रेणाग्रहीषुः। अथैनं सप्तरत्नविचित्रे पञ्जरे स्थापयित्वा मत्स्यमांसफलाफलैश्चैव मधुलाजाशर्करापानकादिभिश्च प्रत्यग्रहीषुः । मयूरराजो लाभाग्रयशोऽग्रप्राप्तो जातः। तस्पागतकालतो प्रस्थाय काकस्य लाभसत्कारः पर्यहायि। कश्चिदप्येनमवलोकयितुमपि नैच्छत् । काकः खादनीयभोजनीयमलभमानः "काके" ति वाश्यमानो गत्वोत्करभूमौ अवातरीत् ।

हिन्दी भावानुवाद

"हमारे द्वारा पहली बार कौआ लाया गया, उसे (आपने) ले लिया, इस बार मयूरराज को लाये (तो आप) उसे भी माँगते हो। आप लोगों के देश में, लगता है, पक्षी लेकर नहीं आया जा सकता।" "हे आर्य, अच्छा, अपने देश में दूसरा (मोर) प्राप्त कर लीजिएगा, इसे हमें दे दीजिए।" इस प्रकार, मूल्य बढ़ाकर हजार (कार्षापण) से ले लिया। तब इसे सात प्रकार के रत्नों से निर्मित रंगबिरंगे पिंजड़े में रखकर मछली, मांस, कन्द–मूल फल, शहद, शक्कर, खील (लाई) और पानक (रस विशेष) आदि से सत्कार करने लगे। मयूरराज (इस प्रकार) उत्तम लाभ और श्रेष्ठ यश पाने लगे। उनके आने के समय से लेकर कौए का लाभ–सत्कार बन्द हो गया। अब काई इसे देखना भी नहीं चाहता था। कौआ भोजन आदि न पाकर "कॉव–कॉव" का शब्द करता हुआ जाकर मल भूमि में उतर गया (अर्थात् स्वभावानुरूप गन्दे स्थान में आहार के लिए चला गया)।

अदस्सनेन मोरस्स सिखिनो मञ्जुमाणिनो।
काकं तत्थ अपूजेसुं मंसेन च फलेन च ।। 1 ।।
यदा च सरसम्पन्नो मोरो बावेरुमागमा ।
अथ लाभो च सक्कारो वायसस्स अहायथ ।।2।।
याव नु' प्पज्जति बुद्धो धम्मराजा पभंकरो।
ताव अञ्ञे अपूजेसुं पुथू समणब्राह्मणे ।।3।।

यदा च सरसम्पन्नो बुद्धो धम्मं अदेसयि ।

अथ लाभो च सक्कारो तित्थियानं अहायथा' ति ।।4।।

संस्कृत रूपान्तर

अदर्शनेन मयूरस्य शिखिनो मञ्जुभाषिणः ।

काकं तत्रापूपुजन् मांसेन च फलेन च ।।1।।

यदा च स्वरसम्पन्नो मयूरो बावेरुमागमत् ।

अथ लाभश्च सत्कारो वायसस्य तदाहायि ।।2।।

यावन्नोत्पद्यते बुद्धो धर्मराजः प्रभाकरः ।

तावदन्येऽपूज्यन्त पृथक् श्रमणब्राह्मणाः ।।3।।

यदा च स्वरसम्पन्नो बुद्धो धर्ममदिक्षत् ।

अथ लाभश्च सत्कारः तैर्थिकानां तदाहायि ।।4।।

हिन्दी भावानुवाद

जब तक (बावेरुदेश में) कलंगीधारी मीठा बोलने वाला मोर पंक्षी नहीं दिखायी पड़ा तब तक वहाँ मांस और फल (खिलाने) से कौआ पूजा जाता रहा ।।1।। जब मीठी बोली का मालिक मोरपक्षी बावेरुदेश में आ गया तब कौवे का मांसफलादि लाभ और सत्कार बन्द हो गया।।2।। (इसी प्रकार) जब तक धर्मराज तेजस्वी (अथवा ज्ञान का प्रकाश करने वाले) बुद्ध उत्पन्न नहीं हुए थे तब तक अन्य श्रमण–ब्राह्मण पूजे जाते थे ।।3।। (किन्तु) जब मधुर वाणी वाले बुद्ध ने धर्म का उपदेश दिया तब अन्य तैर्थिकों (धर्मोपदेशकों) का वास्त्वाहार लाभ और सत्कार बन्द हो गया।।4।।

टिप्पणी –

यह जातक कथा भी अन्य जातक कथाओं की ही तरह तब की है जब काशी (वाराणसी) में ब्रह्मदत्त नामक राजा शासन कर रहे थे। इस जातक में बोधिसत्त्व का जन्म मयूर पक्षी की योनि में हुआ है।

दिसाकाकं – दिक्काकम् । दिशां दिक्षु वा काकः दिक्काकः तम् । द्वितीया विभक्ति एकवचन। 'दिशा काक' का सही अर्थ स्पष्ट नहीं है। यहाँ काक (कौवे) के साथ 'दिशा' विशेषण पद लगाने का अभिप्राय कुछ विशेष अवश्य होगा किन्तु वह स्पष्ट नहीं है। कौवा, लोक में 'श्मशारा पक्षी' या 'चाण्डाल पक्षी' कहा जाता है।

बावेरुरट्ठं – बावेरुराष्ट्रम् । बावेरुनामक राष्ट्र को। द्वितीया विभक्ति एक वचन। जातक के वर्णन से ज्ञात होता है कि हमारे देश से बावेरुदेश जाने के लिए जलमार्ग था। व्यापारी नाव से जाते थे। बावेरुदेश की वर्तमान भौगोलिक

स्थिति का पता नहीं है। संसार में शायद् ही ऐसा कोई देश हो जहाँ पक्षी न पाये जाते हों।

कूपग्ग – कूपाग्रे । कूपस्स अग्गे कूपग्गे । तत्पुरूष समास। सप्तमी विभक्ति एक वचन। यहाँ 'कूप' का अर्थ है नाव की मस्तूल। मस्तूल नाव के बीचो बीच एक मजबूत ऊँचा खम्भा होता है जिसमें पाल बाँधी जाती है।

कहापणेन– कार्षापणेन । तृतीया विभक्ति एक वचन। कार्षापण प्राचीन काल की एक मुद्रा (सिक्का) है।

फलाफलेन – पालि और संस्कृत में समान रूप । फलेन च अफलेन चेति फलाफलेन। तृ. वि., ए. व. । पालिसाहित्य में इस शब्द का प्रयोग अनेकत्र दिखाई देता है। इन शब्द का प्रयोग सामान्यतः व्यवहार में 'फल–मूल' या 'फल–फूल' के अर्थ में किया जाता है। दशभिः असद्धर्मैः – दस असद्धर्मों से । तृतीया विभक्ति, बहुवचन। असद्धर्म का अर्थ यहाँ दोष है। कौवे में दस दोष कहे गये हैं – श्यामवर्णता, अशुचिता, अशुचिमक्षणता, अपशकुनता, ध वनिकर्कशता, धूर्तता, एकाक्षता, क्रूरता धृष्टता, अधीरता (लोलुपता)। इन दोषों के कारण कौवा एक गर्हित पक्षी है।

बावेरुजातक की शिक्षा – 1. श्रेष्ठगुण सम्पन्न व्यक्ति के प्राप्त हो जाने पर हीन गुण वाले व्यक्ति का सम्मान बन्द हो जाता है। 2. स्वभाव दुरतिक्रम है जैसा कि सत्कार बन्द हो जाने पर कौवा आहार की खोज में मलिन स्थान पर चला गया । 3. वणिग्जन ग्राहक की चाह देखकर अपनी वस्तु की मनमानी कीमत वसूलते हैं। अतः व्यवहार में उनसे सावधान रहना चाहिए। 4. भगवान् बुद्ध के उपदेश ही कल्याणकारी हैं।

2.2 मायादेविया सुपिनं

तदा किर कपिलवत्थुनगरे आसोक्हीनक्खत्तं घुट्ठं अहोसि। महाजनो नक्खत्तं कीकेति। महामायादेवी पुरे पुण्णमाय सत्तमदिवसतो पट्ठाय विगतसुरापानं मालागन्धविधूतिसम्पन्नं नक्खत्तकीकं अनुभवमाना सत्तमदिवसे पातो व उठाय गन्धोदकेन नहायित्वा चत्तारि सतसहस्सानि विस्सेज्जेत्वा महादानं दत्वा सब्बालङ्कारविभूसिता वरभोजनं भुञ्जित्वा उपोसथङ्गानि अधिट्ठाय अलङ्कतपटियत्तं सिरिगब्भं पविसित्वा सिरिसयने निपन्ना निद्दं ओक्कममाना इदं सुपिनं अदस्स –

चत्तारो किर नं महाराजानो सद्धिं उक्खिपित्वा हिमवन्तं नेत्वा सट्ठियोजनिके मनोसिलातले सत्तयोजनिकस्स महासालरुक्खस्स हेट्ठा ठपेत्वा एकमन्तं अट्ठंसु । अथ नेसं देवियो आगन्त्वा देविं अनोतत्तदहं नेत्वा ।

संस्कृतरूपान्तर

मायादेव्याः स्वप्नः

तदा किल कपिलवस्तुनगरे आषाढीनक्षत्रं घुष्टमासीत्। महाजनों नक्षत्रं क्रीडति। महामायादेवी पुरः पूर्णिमायाः सप्तमदिवसतः प्रस्थाय विगतसुरापानां मालागन्धविधूतिसम्पन्नां नक्षत्रक्रीडा मनुभवन्ती सप्तमदिवसे प्रातरेवोत्थाय गन्धोदकेन स्नात्वा चत्वारि शतसहस्राणि विसृज्य महादानं दत्वा सर्वालङ्कारविभूषितावरभोजनं भुक्खोपवसथाङ्गान्यधिष्ठायालङ्कृतपर्याप्तं श्रीगर्भं प्रतिश्य श्रीशयने निपन्ना निद्रामवक्रममाणेनं स्वप्नमद्राक्षीत् –

चत्वारः किल नूनं महाराजाः शयनेनैव सध्रीङ्डुक्षिप्य हिमवन्तं नीत्वा षष्टियोजनि के मनःशिलातले सप्तयोजनिकस्य महाशालवृक्षस्याधस्तात् स्थापयित्वैकस्मिन्नन्तेऽस्थुः । अथ निशि देव्यः आगत्य देवीमनवतप्तह्रदं नीत्वा–

मायादेवी का स्वप्न

हिन्दी भावानुवाद

उस समय कपिलवस्तु नगर में आषाढीनक्षत्र घोषित था (आषाढ़ि पूर्णिमा का यह पर्व मनाया जा रहा था)। महाजन (रईस लोग) नक्षत्र क्रीड़ा कर रहे थे । पूर्णिमा के सात दिन पहले से ही मदिरापान का त्यागकर, सुगन्धितमाता पहनकर, गन्धद्रव्यों का शरीर में लेपन करके, नक्षत्र क्रीड़ा (आषाढ़ीपूर्णिमोत्सव) का आनन्द लेती हुई, सातवें दिन प्रातःकाल उठकर, सुगन्धित जल से स्नान करके, चार सौ हजार मुद्रायें बॉटकर महादान देकर समस्त आभूषणों को धारण कर सज कर, उत्तम भोजन ग्रहण कर, ताम्बूलादि ग्रहण करके, खूब सजे हुए श्रीगर्भ (शयन कक्ष) में प्रवेश कर शोभासम्पन्न बिस्तर पर लेटकर निद्रा के वश में हुई देवी महामाया ने यह स्वप्न देखा– 'चार महाराजा उसे पलंग सहित उठाकर हिमालय पर्वत पर ले जाकर साठ योजन विस्तृत मनसिल के चबूतरे पर सात योजन वाले महाशाल वृक्ष के नीचे रखकर (स्वयं) एक ओर हो गये (स्थित हुये)। तदन्तर रात में देवियों (देववधुओं या अप्सराओं) ने आकर देवी (महामाया) को अनवतप्त (सुखोदक) ह्रद (सरोवर) में ले जाकर – मानुसमलहरणत्थं नहापेत्वा दिब्बवत्थं निवासापेत्वा गन्धेहिं विलिम्पापेत्वा दिब्बपुप्फानि पिलन्धापेत्वा – ततो अविदूरे रजतपब्बतो, तस्स अन्तो कनकविमानं अत्थि – तत्थ पाचीनसीसकं दिब्बसयनं पञ्ञापेत्वा निपज्जापेसुं । अथ बोधिसत्तो से तवरवारणो हुत्वा – ततो अविदूरे एको सुवण्णपब्बतो – तत्थ चरित्वा ततो ओरुय्ह रजतपब्बतं अभिरुहित्वा उत्तरदिसतो आगम्भ रजतदामवण्णाव सोण्डाय सेतपदुमं गहेत्वा कोञ्चनादं नदित्वा कलकविमानं पविसित्वा मातुसयनं तिक्खत्तुं पदक्खिणंकत्वा दक्खिणपस्सं ताब्बेत्वा

कुच्छिं पविट्ठसदिसो अहोसि। एवं उत्तरासाक्हनक्खत्तेन पटिसन्धिं गण्हि । पुनदिवसे पबुद्धा देवी तं सुपिनं रञ्ञो आरोचेसि। राजा चतुसट्ठिमत्ते ब्राह्मणपामोक्खे पक्कोसापेत्वा हरितयवुपत्थाय लाजादीहि कतमङ्गलसक्काराय भूमिया महारहानि आसनानि पञ्ञापेत्वा ।

संस्कृत रूपान्तर

मानुषमलहरणार्थं स्नापयित्वा दिव्यवस्त्रं निवास्य गन्धैः विलिप्य दिव्यपुष्पाणि निनाह्य ततोऽविदूरे रजतपर्वतः, तस्यान्ते कनकविमानमस्ति, तत्र प्राचीनशीर्षकं दिव्यशयनं प्रज्ञाप्य न्यपादिषत् । अथ बोधिसत्त्वः श्वेतवरवारणो भूत्वा – ततोऽविदूरे एकः सुवर्णपर्वतः तत्र चरित्वा ततोऽवरुह्य रजतपर्वतमभिरुह्योत्तरदिक्तः आगत्य रजतदामवर्णाभशुण्डया श्वेतपद्मं गृहीत्वा क्रौञ्चनादं नदित्वा कनकविमानं प्रविश्य मातुःशयनं त्रिःकृत्वः प्रदक्षिणांकृत्वा दक्षिणपार्श्वं ताडयित्वा कुक्षिं प्रतिष्ट सदृशोऽभूत् । एवमुत्तराषाढ़नक्षत्रेण प्रतिसन्धिमग्रहीत्। पुनःदिवसे प्रबुद्धा देवी तत्स्वप्नं राजानमारूरुचत् । राजा चतुःषष्टिमात्रान् ब्राह्मणप्रमुखान् प्राक्रृश्य हरितयवानुपस्थायत्वाजादिभिः कृतमङ्गलसत्कारायां भूमौ महार्हाण्यासनानि ।

हिन्दी भावानुवाद

मनुष्यगत मल को दूर करने के लिए स्नान कराकर, दिव्यवस्त्र धारण कराकर, गन्ध द्रव्यों का लेपकर, दिव्य पुष्पों से श्रृंगार कर, वहाँ से समीप ही रजत पर्वत के नीचे एक स्वर्ण विमान है, उसमें पूर्व के कोण में दिव्यशयन लगाकर लिटा दिया। तत्पश्चात् बोधिसत्त्व श्रेष्ठ श्वेत हाथी (के रूप में) होकर, वहीं से समीपवर्ती स्वर्ण पर्वत पर विचरण करके, वहाँ से उतर कर रजतपर्वत पर चढ़ कर उत्तरदिशा से होते हुए आकर, चाँदी की रस्सी के समान अपनी सूँड़ से श्वेतकमल लेकर क्रौञ्चपक्षी की तरह शब्द करते हुए स्वर्णविमान में प्रवेश करके माता के शयन (पलंग) की तीन बार प्रदक्षिणा करके दाहिने पार्श्व भाग पर आघात करके कुक्षि में प्रवेश किये हुए जैसे हो गये। इस प्रकार, उन्होंने उत्तराषाढ़ नक्षत्र के साथ प्रति सन्धि ग्रहण की। अगले दिन जागने पर महामाया देवी ने उस स्वप्न को राजा से रूचिपूर्वक बताया। राजा ने चौंसठ प्रमुख ब्राह्मणों को बुलाकर, हरे जौ बिछा कर और लाजाओं से भूमि का मंगल सत्कार करके, उस भूमि पर आसन लगाकर तत्थ निसिन्नानं ब्राह्मणनं सप्पिम धु सक्कराभिसङ्खतस्स वरपायसस्स सुवण्णरजतपातियो पूरेत्वा सुवण्णरजतपातीहि येव पटिकुज्जेत्वा अदासि, अञ्ञहि च अहतवत्थकपिलगाविदानादीहि ते सन्तप्पेसि। अथ तेसं सब्बकामेहि सन्तप्पितानं सुपिनं आरोचेत्वा – "किं भविस्सती" ति पुच्छि। ब्राह्मणा आहंसु – "मा चिन्तयि महाराज, देविया ते कुच्छिम्हि गब्भो पति ट्ठितो, सो च खो

पुरिसगब्भो न इत्थिगब्भो। पुत्तो ते भविस्सति । सो सचे अगारं अज्झावसिस्सति राजा भविस्सति चक्कवत्ती, सचे अगारा निक्खम्भ पब्बजिस्सति, बुद्धो भविस्सति लोके विवट्ठच्छदो'' ति ।।

संस्कृत रूपान्तर

प्रज्ञाप्य तत्र निषण्णेभ्यो ब्राह्मणेभ्यः सर्विमधुशर्कराभिः संस्कृतस्य वरपायसस्य सुवर्णरजतपात्री। पूरयित्वा सुवर्णरजतपात्रीमिरेव प्रतिकुज्यादाद् अन्यैश्चाहतवस्त्रकपिलगोदानादिभिस्तान् समतीतृपत् । अथ तेषां सर्वकामैः सन्तर्पितानां स्वप्नमारोच्य किं भविष्यतीत्यप्राक्षीत् । ब्राह्मणा अवोचन् – "मा चिन्तय महाराज, देव्यास्ते कुक्ष्यां गर्भः प्रतिष्ठितः, सच खलु पुरूषगर्भः न स्त्रीगर्भः । पुत्रस्ते भविष्यति चेदागारमध्यावत्स्यति राजा भविष्यति चक्रवर्ती, चेदागारात् निष्क्रम्यप्रव्रजिष्यति बुद्धो भविष्यति लोके विवर्तच्छद्" इति।।

हिन्दी भावानुवाद

उन पर आसीन ब्राह्मणों को घी, मधु और शर्करा से अच्छी तरह बनायी गयी खीर से सोने–चॉदी की थालियों को भरकर सोने–चॉदी की थालियों से ही ढॅककर दिया और नये धुले हुए वस्त्रों तथा कपिला गायों आदि के दान से उन्हें सन्तुष्ट किया। तत्पश्चात् हर प्रकार से सन्तुष्ट और पूर्ण इच्छाओं वाल उन ब्राह्मणों को (देवी का) स्वप्न बताकर पूछा कि इसका फल क्या होगा? ब्राह्मणों ने कहा – "महाराज! आप चिन्ता न करें। आपकी देवी की कोख में गर्भ प्रतिष्ठित हो गया है । और, वह पुरुषगर्भ है न कि स्त्रीगर्भ । आपका पुत्र जन्म लेगा। यदि वह अन्त तक महत्व में रहेगा तो चक्रवर्ती राजा होगा और यदि महल से निकाल कर संन्यास ग्रहण करेगा तो वह संसार में अज्ञान रूपी आवरण का विनाश करने वाला बुद्ध होगा।।

टिप्पणी –

'मायादेविया सुपिनं' शीर्षक गद्यांश जातकान्तर्गत निदान कथा से गृहीत है। इस पाठ में गर्भ में बोधिसत्व (बुद्ध) को धारण करने से पूर्व महाराज शुद्धोदन की महारानी मायादेवी द्वारा देखे गये स्वप्न का वर्णन है।

इस पाठ के आरम्भ में 'आषाढ़ी नक्षत्र' का उल्लेख हुआ है। कुल सत्ताईस नक्षत्रों में से दो नक्षत्र 'आषाढ़' नाम से है। बीसवॉ नक्षत्र है पूर्वाषाढ़ा और इक्कीसवॉ नक्षत्र है 'उत्तराषाढ़ा' । चूँकि इस मास की पूर्णिमा 'आषाढ़ी' नक्षत्र में घटित होती है अतएव महीने का नाम 'आषाढ़' पड़ गया। यह महीना वर्षा ऋतु का प्रथम मास गिना जाता है। आषाढ़ी पूर्णिमा को 'गुरूपूर्णिमा' के रूप में मनाते हैं। यह वर्तमान काल में गुरूपूजा का पर्व है।

यहॉ 'आषाढ़ी नक्षत्र' की घोषणा किया जाना लिखा है। इससे ज्ञात

होता है कि इस पर्व के आयोजन हेतु राजाज्ञा घोषित होती थी। बड़े लोग (अभिजातवर्गीय) इस नक्षत्र के उपलक्ष्य में आमोद प्रमोद करते थे। महारानी मायादेवी ने भी सात दिन पहले से ही मदिरा का त्याग कर और उस दिन सज धज कर पूरी तैयारी के साथ इस उत्सव का आनन्द लिया था।

सुपिनं – स्वप्नः । यद्यपि पालि में यह शब्द नपुंसक लिंग में प्रयुक्त है किन्तु संस्कृत में यह शब्द पुल्लिंग है। सिरिगब्भं – श्रीगर्भम् । द्वि. वि, ए, वक्र, 'श्रीगर्भ' का अभिप्राय अन्तःपुरस्थ महारानी के विशिष्ट शयनकक्ष से है। 'गर्भ' और 'शयन' शब्दों से पूर्व लगा हुआ 'श्री' विशेषण शयन कक्ष और पलंग की विशिष्ट शोभा और राजकीय ऐश्वर्य को सूचित करता है।

ओक्कममाना – अवक्रममाणा । (जागरण दशा से) उतर कर (नींद की ओर) बढ़ती हुई।

अव+क्रम+शानच् । पालि में शानच् के स्थान पर वर्तमान कालिक कृदन्त 'मानो' का प्रयोग होता है। स्त्रीलिंग में इसका रूप 'माना' होता है। प्रथम विभक्ति, एक वचन। कनकविमानं – कनकतिमानम् । प्र. वि., ए. व.। कनकस्य कनकनिर्मितं वा विमानम् । यहाँ 'विमान' का अर्थ है। शानदार भवन या कक्ष। सात मंजिले महल को भी 'विमान' कहते हैं। उत्तरासाकहनक्खत्तेन पटिसन्धिंगण्हि + उत्तराषाढ़ानक्षत्रेण प्रतिसन्धिमग्रहीत्। इस पदसमूह के शाब्दिक अर्थ से कोई विशेष अभिप्राय स्पष्ट नहीं होता। इससे पूर्व वर्णन है कि बोधिसत्त्व उत्तम श्वेतवर्ण के हाथी के रूप में अपनी सूँड़ में श्वेत कमल लेकर आये और महारानी के गर्भ में प्रवेश किये हुए जैसे हो गये। इस प्रकार उन्होंने उत्तराषाढ़ा नक्षत्र के साथ प्रतिसन्धि ग्रहण की। 'प्रतिसन्धि' का अर्थ है – 'गर्भाशय में प्रवेश।' चन्द्रमा सुन्दरता का प्रतीक है। अतः यहाँ आशय है कि बोधिसत्त्व ने चन्द्रमा से संयुक्त होकर (अत्यन्त सुन्दर रूप में) गर्भ में प्रवेश किया।

2.3 महाभिनिक्खमनं

तस्मिं समये 'राहुलमाता पुत्तं विजाता' ति सुत्वा सुद्धोदनमहाराजा 'पुत्तस्स मे तुटिठ निवेदेथा' ति सासनं पहिणि। बोधिसत्तोतं सुत्वा 'राहुलो जातो बन्धनं जातं' ति आह। राजा 'किं मे पुत्तो अवचा' ति पुच्छित्वा तं वचनं सुत्वा 'इतो पट्ठाय मे नत्तु राहुलकुमारो त्वेव नामं होतू' ति। बोधिसत्तो पि खो रथवरं आरुय्ह महन्तेन यसेन अतिमनोरमेन सिरिसोभग्गेन नगरं पाविसि। तस्मिं समये किसागोतमी नाम खत्तियकञ्ञा उपरिपासादवरतलगता नगरं पदक्खिणं कुरूमानस्स बोधिसत्तस्स रूपसिरिंग दिस्वा पीतिसोमनस्सजाता इमं

उदानं उदानेसि –

निब्बुता नून सा माता, निब्बुतो नून सो पिता ।
निब्बुता नून सा नारी यस्सायं ईदिसो पती' ति ।।

महाभिनिष्क्रमणं

संस्कृत रूपान्तर

तस्मिन् समये 'राहुलमाता पुत्रं व्यजायते' ति श्रुत्वा शुद्धोदनमहाराजः– 'पुत्रं मे तुष्टिं निवेदयते' ति शासनं प्रैषीत् । बोधिसत्त्वः तच्छ्रुत्वा, "राहुलो जातो बन्धनंजातमि" त्याह। राजा, "किं में पुत्रोऽवोचदि" ति पृष्ट्वा, तद्वचनं श्रुत्वा, "इतः प्रस्थाय में नप्तूराहुलकुमारस्त्वेव नाम भवत्वि" ति। बोधिसत्त्वोऽपि खलु रथवरमारुह्य महता यशसाऽतिमनेरमेण श्रीसौभाग्येन नगरं प्रविशत् । तस्मिन् समये कृशागौतमी नाम क्षत्रियकन्योपरिप्रासादावरतलगता नगरं प्रदक्षिणां कुर्वतो बोधिसत्त्वस्य रूपश्रियं दृष्ट्वा प्रीतिसौमनस्यजातेद्मवदानमवादीत्–

निर्वृता नूनं सामाता निर्वृतो नूनं स पिता ।
निर्वृता नूनं सा नारी यस्याअयमीदृशः पतिः ।। इति।

महाभिनिष्क्रमण (गृह त्याग)

हिन्दीभावानुवाद

उस समय 'राहुलमाता ने पुत्र पैदा किया' – ऐसा सुनकर महाराज शुद्धोदन ने आदेश दिया कि यह सन्तोषप्रद वार्ता मेरे पुत्र को सुनाओं। बोधिसत्त्व ने यह सुनकर, "राहुल पैदा हुआ, बन्धन पैदा हुआ" – ऐसा कहा। "मेरे पुत्र ने क्या कहा?"– ऐसा पूछकर, उसके कथन को सुनकर (राजा ने) कहा कि आज से मेरे नाती का नाम राहुल कुमार ही हो। बोधिसत्त्व भी एक श्रेष्ठ रथ पर चढ़कर, महान् यश और अतिमनोहर श्री सौभाग्य से युक्त होकर नगर में प्रविष्ट हुए । उस समय महल से उतर कर छज्जे पर स्थित कृशागौतमी नामक क्षत्रियकन्या ने नगर की प्रदक्षिणा करते हुए बोधिसत्त्व की रूपशोभा को निहारकर प्रीतिप्रफुल्लमन से इस गाथा को कहा –

"वह माता धन्य हो गयी और वह पिता धन्य हो गया (जिसका ऐसा पुत्र है) और वह स्त्री (पत्नी) भी निश्चय ही धन्य है जिसका ऐसा पति है।"

बोधिसत्तो तं सुत्वा चिन्तेसि – अयं एवं आह – एवरूपं अत्तभावं पस्सन्तिया मातुहदयं निब्बायति, पितुहदयं निब्बायति, पजापतिहदयं निब्बायति। कस्मिंनु खो निब्बुते हृदयं निब्बुतं नाम होती' ति ? अथस्स किलेसेसु विरत्तमानसस्स एतदहोसि – 'रागग्गिहि निब्बुते निब्बुतं नाम होति, दोसग्गिम्हि, मोहग्गिम्हि निब्बुते निब्बुतं नाम होति, मानदिट्ठि–आदिसु सब्बकिलेसदरथेसु निब्बुतेसु

निब्बुतंनाम होति, अयं में सुस्सवनं सावेसि, अहं हि निब्बानं गवेसन्तो चरामि। अज्जेवमया घरावासं घड़ेत्वा निक्खम्म पब्बजित्वा निब्बानं गवेसितुं वट्टति। अयं इमिस्सा आचरियभागो होतू' ति कण्ठतो ओमुञ्चित्वा किसागोतमिया सतसहस्सग्घनकं मुत्ताहारं पेसेसि। सा 'सिद्धत्थकुमारो मयि।

संस्कृत रूपान्तर

बोधिसत्त्वः तच्छ्रुत्वाऽचिन्तयत् – इयमेवमाह – एवं रूपमात्मभावं पश्चन्त्या मातुर्हृदयं निर्वायते, पितुर्हृदयं निर्वायते, प्रजापतिहृदयं निर्वायते। कस्मिन्नु खलु निर्वृते हृदयं निर्वृतं नाम भवतीति । अथास्य क्लेशेषु विरक्तमानसस्यैतदभूत् – 'रागाग्नौ निर्वृते निर्वृतं नाम भवति, दोषाग्नौ मोहाग्नौ निर्वृते निर्वृतं नाम भवति, मानदृष्ट्यादिषुसर्वक्लेशाद्यर्थेषु निर्वृतेषु निर्वृतंनामभवति, इयं में सुश्रवणमशूश्रवद्, अहं हि निर्वाणं गवेषयन् न्वरामि। अद्यैव भया गृहावासं छर्दयित्वा निष्क्रम्य प्रव्रज्य निर्वाणं गवेषितुं वर्तते। अयमस्या आचार्यभागो भवत्वि' ति कण्ठतोऽवमुच्य कृशागौतम्यै शतसहस्रार्घणकं भुक्ताहारं प्रैषिषत् । सा 'सिद्धार्थकुमारो मयि–

हिन्दी भावानुवाद

बोधिसत्त्व यह सुनकर सोचने लगे –'इसने ऐसा कहा – "ऐसे रूप और अपनत्व को देखते हुए माता का हृदय निर्वृत हो जाता है, पिता का हृदय निर्वृत हो जाता है, नारी (पत्नी) का हृदय निर्वृत हो जाता है। (तो) किसके निर्वृत होने पर हृदय निर्वृत होता है?" फिर, क्लेशों से विरक्त होने वाले इनके (मनमें) ऐसा हुआ – 'रागाग्नि के निर्वृत होने पर (हृदय) निर्वृत होता है, दोषाग्नि, मोहाग्नि के निर्वृत होने पर (हृदय) निर्वृत होता है।, मानदृष्टि आदि सभी क्लेश के कारणों के निर्वृत हो जाने पर (हृदय) निर्वृत होता है। इसने मुझे सुन्दर सुनने योग्य सुनाया । अब मैं निर्वाणकी खोज करते हुए विचरण करूँगा। मुझे आज ही घरबार छोड़कर । (संसार से) निकल कर संयस्त होगर निर्वाण की खोज करनी है। 'यह इसकी गुरूदक्षिणा हो' – ऐसा सोचकर सैकड़ों हजार मुद्राओं से खरीदने योग्य मोतियों के हार को गले से उतार कर कृशागौतमी के पास भेज दिया। 'सिद्धार्थ कुमार ने मुझमें अनुरक्त हो पटिबद्धचित्तो हुत्वा पण्णाकारं पेसेती' सोमनस्सजाता अहोसि। बोधिसत्तो पि महन्तेन सिरिसोभग्गेन अत्तनो पासादं अभिरूहित्वा सिरिसयेन निपज्जि। तावदेव नं सब्बालङ्कारपटिमण्डिता नच्चगीतादिसु सुसिक्खिता देवकञ्ञा वियरूपप्पत्ता इत्थियो नानातुरियानि गहेत्वा सम्परिवारयित्वा अभिरमापेन्तियोनच्चगीतवादितानि पयोजयिंसु । बोधिसत्तो किलेसेसु विरतचित्तताय नच्चादिसु अनभिरतो मुहुत्तं निद्दं ओक्कमि। तापि इत्थियो 'यस्सत्थाय मयं नच्चादीनिपयोजयाम सो निद्दं उपगतो इदानिं किं मत्थं

किलमामा' ति गहितगहितानि तुनियानि अज्झोत्थरित्वा निपज्जिंसु। गन्धतेलप्पदीपा झायन्ति। बोधिसत्तो पबुज्झित्वा सयनपिट्ठे पल्लङ्केन निसिन्नो अदस्सता इत्थियो तुरियभण्डानि अवत्थरित्वा

कृत रूपान्तर

प्रतिबद्धचित्तो भूत्वा पण्याकारं प्रैषिषदि' तिसौमनस्यजाताऽभूत्। बोधिसत्त्वोऽपि महता श्री सौभाग्येनात्मनः प्रासादमभिरूह्य श्रीशयने न्ययादि। तावदेव नूनं सर्वाभरणालङ्कारप्रतिमण्डिताः नृत्यगीतादिषु सुशिक्षिताःदेवकन्या इव रूपप्राप्ताः स्त्रियोनानातूर्याणि गृहीत्वा सम्प्रवार्याभिरभिरमन्त्यो नृत्यगीतवादित्राणि प्रायूसुजन् । बोधिसत्त्वः क्लेशेषु विरक्तचित्ततया नृत्यादिष्वनभिरतो मुहूर्तं निद्रामवाक्रमीत् । ता अथिस्त्रियः, 'यस्यार्थं वयं नृत्यादीन् प्रयोयजयामः स निद्रामुपगतः, इदानीं किमर्थं क्लाम्यामः' इति गृहीतगृहीतानि तूर्याण्यध्यवस्तीर्य न्यपादिषत। गन्धतैलप्रदीपाः ध्यायन्ति। बोधिसत्त्वः प्रबुद्धय शयनपृष्ठे पर्यङ्केण निषण्णेऽद्राक्षीत् – ताः स्त्रियः तूर्यभाण्डानि अवस्तीर्य निद्रायमाणा एकत्याः प्रक्षरितक्ष्वेडाःलालाक्लिन्नगात्राः ।

हिन्दी भावानुवाद

यह मूल्य का अग्रिम भेजा है।' – ऐसा (सोचकर) वह प्रसन्न हो गयी। बोधिसत्त्व भी महान् श्री सौभाग्य से सम्पन्न होकर अपने प्रासाद पर चढ़कर श्रीशयन पर लेट गये। तब वहाँ समस्त आभूषणों से सुसज्जित,नृत्यगीतादि में सुशिक्षित अप्सराओं की तरह सुन्दर स्त्रियाँ नाना प्रकार के तूर्यों को लेकर, उन्हें खोलकर अभिरमण करती हुई नृत्य, गीत और वाद्यों का प्रयोग करने लगीं। क्लेशों से विरक्तवित्त होने के कारण नृत्यादि में रूचि न लेते हुए बोधिसत्तव क्षण भर में सो गये। वे स्त्रियाँ भी, जिसके लिए हम नाच गाने का प्रयोग कर रहे हैं। वह सो गया, तो अब क्यों अपने को थकायें' –ऐसा सोचकर लिये गये तूर्यों को एक तरफ रखकर सो गयी। गन्धतैल प्रदीप बुझ गये। बोधिसत्त्व ने, जागकर पलंग के ऊपर बैठे हुए देखा – वे स्त्रियाँ तूर्य पात्रों को समेट कर सो रहीं हैं । कोई तो पसीना निद्दायन्तियो एकच्चा पग्घरितखेका लालाकिलिन्नगता, एकच्चा दन्ते खादन्तियो, एकच्चा काकच्छन्तियो, एकच्चा विघलपन्तियो, एकच्चाविवटमुखा, एकच्चा अपगतवत्था पकटबीभच्छसम्बाघट्ठाना। सो तासंतं विप्पकारं दिस्वा मिय्योसोमत्ताय कामेसु विरतो अहोसि। तस्स अलंकतपरियत्तं सक्कभवनसदिसं पितं महातलं विप्पविद्धनानाकुणपभरिवं आमकसुसानं वियउपट्ठासि। तयो भवा आदित्तगेहसदिसा विय खायिंसु। 'उपद्दुतत्तं वत भो, उपस्सट्ठं वत भो' उदानं पवत्ति। अतिविय पब्बज्जाय चित्तं नामि। सो 'अज्जे व मया महाभिनिक्खमनं निक्खमितुं वट्टति' ति सयना

उट्ठाय द्वारसमीपं गन्त्वा–"को एत्थ' ति आह। उम्मारे सीसं कत्वा निपन्नो छन्नो, 'अहं अय्यपुत्त छन्नो' ति आह। 'अहं अज्ज महाभिनिक्खमनं निक्खमितुकामो, एकं में अस्सं कप्पेही'

संस्कृत रूपान्तर

एकत्याः दन्तान् खादन्त्यः, एकत्याः काकथ्यमानाः, एकत्याः विप्रलपन्त्यः, एकत्याः विवृतमुखाः, एकत्या अपगतवस्त्राःप्रकटबीभत्ससंबाधस्थानाः। स तासां तं विप्रकारं दृष्ट्वा भूयः सुमात्रतया कामेक्षु विरक्तोऽभूत् । तस्यालंगकृतपर्याप्तं शुक्रभवनसदृशमपि तन्महातलं विप्रवृद्धनानाकुणपभरितमामकश्मशानमिवोपस्थात्। त्रयोभवा आदीप्तगेहसदृशाइव ज्वलिताः। 'उपद्रुतं बतभो, उपसृष्टं बत भो' इत्यवदानं प्रावर्ति। अतीव प्रव्रज्यायै चित्तमनंसीत्। सः 'अद्यैवभ्या महाभिनिष्क्रमणं निष्क्रमितुं वर्तते' इति शयनादुत्थाय द्वारसमीपं गत्वा 'कोऽत्रे' त्याह। उम्मारे शीर्षं कृत्वा निपन्नश्छन्दः – 'अहमार्यपुत्र ! छन्द' इत्याह । 'अहमद्य महाभिनिष्क्रमणं निष्क्रमितु –

हिन्दी भावानुवाद

पसीना बहने से, कोई लार बहने से लथपथ शरीर वाली हैं, कोई दाँत किटाकिटा रही हैं, कोई बड़बड़ा रही हैं, कोई (स्वप्न में) रो रही हैं, कोई मुँह खोले हैं, तो किसी के वस्त्र हट जाने से अश्लील अंग प्रत्यक्ष दिखाई पड़ रहे हैं। उन स्त्रियों की ऐसी विकृत दशा देखकर वे और भी काम से विरक्त हो गये। उनका वह सुसज्जित इन्द्रभवन के समान अपना महल सड़े हुए शवों और मांस के लोथड़ों से भरे शमशान की तरह लगने लगा। तीनों लोक जलते हुए घर के समान प्रतीत होने लगे। 'अरे भागो, अरे निकल चलो' – ऐसा उनके मुँह से निकल पड़ा। मन संन्यास की ओर और अधिक झुक गया। 'आज ही मुझे महानिमिष्क्रमण के लिए निकल जाना है' ऐसा सोच कर वे पलंग से उठकर द्वार के पास जाकर बोले – "यहाँ कौन है?" ड्योढ़ी पर सिर रख कर लेटे हुए छन्द (क) ने कहा– "आर्यपुत्र! मैं छन्द (क) यहाँ हूँ।" "मैं अभी महाभिनिष्क्रमण के लिए निकल जानाचाहता हूँ।

ति । सो 'साधु देवा' ति अस्सभण्डकं गहेत्वा अस्ससालं गन्त्वा गन्धतेलप्पदीपेसु जलन्तेसु सुमनपट्टवितानस्स हेट्ठा रमणीये भूमिभागे ठितं कन्थकं अस्सराजानं दिस्वा 'अज्ज मया इमं एवकप्पेतुं वट्टती' ति कन्थकं कप्पेसि। सो कप्पियमानो व अञ्ञासि– 'अयं कप्पना अति गाकहा, अञ्ञेसुदिवसेसु उञ्ञानकीकादिगमने कप्पना विय न होति, मय्हं अय्यपुत्तो महाभिनिक्खमनं निक्खमितुकामो भविस्सती' ति । ततो तुट्ठमानसो महाहसितंहसि । सो सद्दो सकलनगरं पत्थरित्वा गच्छेय्य ,देवता पन तं सद्दं निरुम्भित्वा नकस्सचि सोतुं अदंसु। बोधि

ासत्तोपिखो छन्नं पसेत्वा व 'पुत्तं ताव पस्सिस्सामी' ति चिन्तेत्वा निसिन्नपल्लंकोत वुट्ठाय राहुलमाताय

संस्कृत रूपान्तर

कामः, एकं मेऽश्वं कल्पय' इति। सः 'साधु देव!' इत्यश्वमाण्डकं गृहीत्वाऽश्वशणां गत्वा गन्धतैलप्रदीपेषु ज्वलत्सु सुमनःपट्टवितानस्याधस्तात् रमणीये भूमिभागे स्थितं कन्थकमश्वराजं दृष्टवा –'अद्यायमेव मया कल्पनीयो वर्तते' इति कन्थकमक्लृप्त । स कल्पयन्नेवाज्ञासीत् – इयं कल्पनातिगाढा, अन्येषु दिवसेषूद्यानक्रीडादिगमने कल्पनेव न भवति। अस्माकमार्यपुत्रो महाभिनिष्क्रमणं निष्क्रमितुकामो भविष्यतीप्ति। ततस्तुष्टमानसो महाहसितमहासीत्। सः शब्दः सकलनगरं प्रस्तीर्य गच्छेत्, देवताः पुनस्तंशब्दं निरुद्ध्य न कञ्चित् श्रोतुमदुः । बोधिसत्त्वोऽपि खलु छन्दं प्रष्यैव, पुत्रं तावद् द्रक्ष्यामीति चिन्तयित्वा निषण्णपर्यंकतः उत्थाय राहुलभातुः वसनस्थानं गत्वा ।

हिन्दी भावानुवाद

मेरे लिए एक घोड़ा तैयार करो।" "अच्छा,महाराज!" ऐसा कहकर, वह अश्वाभूषण लेकर अश्वशाला में जाकर गन्ध तैलप्रदीप के प्रकाश में सुमनपट्ट वितान के नीचे रमणीय भूभाग में स्थित अवशराज कन्थक को देखकर, 'आज मुझे इसी को सजाना है' – ऐसा निश्चय करके कन्थक को सजाया। अलंकृत होते हुए कन्थक ने समझ लिया कि यह सजावट अतिशय प्रगाढ़ है, उपवनक्रीड़ादि के लिए जाने हेतु ऐसी साज सज्जा नहीं की जाती थी। हमारे आर्य पुत्र महाभिनिष्क्रमण के लिए आज ही निकलेंगे। अतः सन्तुष्ट मन वाले उसने सजते हुए ही जोर से अट्टहास किया। यह शब्द पूरे नगर में न फैल जाय अतःदेवताओं ने उस शब्द को रोक कर किसी को सुनने न दिया। इधर, बोधिसत्त्व ने भी, 'छन्द को तो भेज ही दिया है, तब तक पुत्र को देख लूँ' – ऐसा विचार करके पलंग से उठकर वसनट्ठानं गन्त्वा गब्भद्वारं विवरि। तस्मिं रवणे अन्तागब्भगन्ध तेलप्पदीपो झायति। राहुलमाता सुमनमल्लिकादीनं पप्फानं अम्मणमत्तेन अभिप्पकिण्णसयने पुत्तस्समत्थके हत्थं रूपेत्वा निद्दायति। बोधि ासत्तो उम्मारे पादं ठपेत्वा ठितको व ओलोकेत्वा – 'स चाहं देविया हत्थं अपनेत्वामम पुत्तं गण्हिस्सामि, देवी पबुज्झिस्सति, एवं मे गमनन्तरायो भविस्सति। बुद्धो हुत्वा व आगन्त्वा पस्सिसामि' ति पासादतलतो ओतरि।

संस्कृत रूपान्तर

गर्भद्वारं व्यवीवरत् । तस्मिन् क्षणेऽन्तर्गर्भे गन्धतैलप्रदीपोध्यायति। राहुलमाता सुमनोमल्लिकादीनां पुष्पाणामर्मणमात्रेणाभिप्रकीर्णशयने पुत्रस्यमस्तके हस्तं स्थापयित्वा निद्रायते स्म। बोधिसत्त्व उम्मारे पादं स्थायित्वा स्थित एवावलोक्य–

'चेदहं देव्याः हस्तमपनीय मम पुत्रं ग्रहीष्यामि देवी प्रबोधत्स्यते, एवं मे गमनान्तरायो भविष्यति । बुद्धो भूत्वैवाग्म्यद्रक्ष्यामी' ति प्रासादतलतोऽवातरीत् ।।

हिन्दी भावानुवाद

राहुलमाता के निवास स्थान में जाकर अन्तःपुर का द्वार खोल दिया। उस समय अन्दर अन्तःपुर में गन्धतैलप्रदीप बुझ गये थे। राहुलमाता, सुमनमल्लिका आदि फूलों की पंखुड़ियों मात्र से अवकीर्ण बिस्तर पर, पुत्र के मस्तक पर हाथ रखकर सो रही थी। बोधिसत्त्व ने ड्योढ़ी पर ही पैर रखकर खड़े होकर (विचारपूर्वक) देखकर – 'यदि मैं देवी का हाथ हटाकर अपने पुत्र को उठाऊँगा (गोद में लूँगा) तो देवी जाग जायेगी, इस प्रकार मेरे गमन में बाधा उपस्थित होगी। (अतः) बुद्ध होकर ही आकर देखूँगा' – ऐसा सोचकर महल से नीचे उतर गये।।

टिप्पणी –

इस पाठ के गद्यांश को भी जातक की 'निदानकथा' से उद्धृत किया गया है। इसमें सिद्धार्थ को पुत्र प्राप्ति के पश्चात् उनके गृहत्याग का वर्णन किया गया है।

राहुलमाता – राहुल की माँ। राहुलस्य माता राहुलमाता। प्र. वि., एक वचन। महाराज शुद्धोदन और महारानी मायादेवी की पुत्र वधू और सिद्धार्थ की पत्नी के लिए यह शब्द (संज्ञा) प्रयुक्त है। वस्तुतःपुत्र हो जाने पर उसका नामकरण 'राहुल' किया गया। पुत्र पैदा होने के अवसर पर जननी को राहुलमाता कहना तर्कसंगत नहीं है। अतः यह प्रयोग चिन्त्य है।

विजाता – व्यजायत = वि + अजायत। पैदा किया । पुच्छित्वा – पृष्ट्वा। प्रच्छ + कत्वा । पूछकर । उदानं – अवदानम् । अव+दा+ल्युट् । यहाँ अवदान का अर्थ है – प्रशस्तिगाथा।

पजापतिहदयं – प्रजापतिहृदयम् । पजापत्या हदयं, छट्टीतत्पुरिस । पालिसाहित्य में पत्नी के अर्थ में 'पजापति' शब्द का बहुशः प्रयोग हुआ है। 'प्रजा' का अर्थ है सन्तान। जो अपनी सन्तान पैदा करने के पश्चात् उसका अच्छी तरह लालन पालन करे वह स्त्री (माँ) 'प्रजापति' कहलाती है।
रागग्गिम्हि – राग+अग्गिम्हि।

रागाग्नौ । सप्तमी विभक्ति, एक वचन। रागरूपी अग्नि। संसार के प्रति लगाव या आसक्ति को राग कहते हैं। जैसे अग्नि किसी वस्तु के सम्पर्क में आने पर जलाती है, वैसे ही राग भी अन्तः करण को सन्तप्त करता है। राग के निर्वृत (प्रशमित) हो जाने पर हृदय को परम शान्ति प्राप्त हो जाती है।

पण्णाकारं – पण्याकारम् । पण्य + आकारम् । द्वितीय + आकारम् । द्वितीया

विभक्ति, एक वचन । सौदे का अग्रिम (A token value)। कृशागौतमी को यहाँ क्षत्रियकन्या कहा गया है। उल्लेख से उसका पण्यस्त्री होना प्रमाणित नहीं है। सिद्धार्थ कुमार ने उसकी उदानगाथा से प्रेरित होकर प्रव्रज्या लेने का निश्चय किया और इस रूप में उसे गुरू (उपदेशक आचार्य) की कोटि में रखकर अपना हार उसे आचार्य भाग (गुरू दक्षिणा) के रूप में प्रेषित किया। उसने समझा कि कुमार ने मुझ पर अनुरक्त होकर मुझे 'पण्णाकार' (मेरा उपभोग करने हेतु अग्रिम) भेजा है। उम्मारे – उम्मारे । सप्तमी विभक्ति, एक वचन। ड्यौढ़ी या द्वार की चौखट ।

इस पाठ के अन्तिम अंश में स्त्री आदि का वीभत्स वर्णन कर के संसार से विरक्ति की दृढ़ता प्रदर्शित की गयी है।

2.4 महापरिनिब्बानसुत्तं

अथ खो भगवा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि – "सिया खो पनानन्द, तुम्हाकं एवं अस्स – "अतीतसत्थुकं पावचनं । नत्थि नो सत्था' ति । न खो पने तं, आनन्द, एवं दट्ठब्बं। यो वो आनन्द, मया धम्मो च विनयो च देसितो पञ्ञत्तो, सो वो ममच्चयेन सत्था। यथा खो पनानन्द, एतरहिभिक्खू अञ्ञमञ्ञं आवुसोवादेन समुदाचरन्ति, न वो ममच्चयेन एवं समुदाचरितब्बं। थेरतरेन, आनन्द, भिक्खुना नवकतरो भिक्खु नामेन वा गात्तेन वा आवुसोवादेन वा समुदाचरितब्बो। नवकतरेन भिक्खु नामेन वा गात्तेन वा आवुसोवादेन वा समुदाचरितब्बो। नवकतरेन भिक्खुना थेरतरो भिक्खु 'भन्ते' ति वा 'आयस्मा' ति वा समुदाचरिताब्बो। आकंखमानो, आनन्द, संघो ममच्चयेन खुद्दानुखुद्दकानि सिक्खापदानि समूहन्तु। छन्नस्स, आनन्द, ममच्चयेन ब्रह्मदण्डो दातब्बो" ति।

महापरिनिर्वाणसूत्रम्

संस्कृत रूपान्तर

अथ खलु भगवान् आयुष्मन्तमानन्दममन्त्रयत् – "स्यात्खलु पुनः आनन्द, युष्माकमेवं भवेत् – 'अतीतशास्तृकं प्रावचनं, नास्ति नः शास्ते' ति। न खलु पुनरेतदानन्द, एवं द्रष्टव्यं । यो वःआनन्द, मया धर्मश्च विनयश्च देशितः, प्रज्ञप्तः, स वो ममात्ययेन शास्ता। यथा खलु पुनः आनन्द, एतर्हि भिक्षुमन्योऽन्यमावुसोवादेन समुदाचरन्ति, न खलुममात्ययेनैवं समुदाचरितव्यम्। स्थविरतरेणानन्द, भिक्षुणा नवकतरो भिक्षुर्नाम्नावा गोत्रेण वावुसोवादेन वा समुदचरितव्यः। नवकतरेण भिक्षुणा स्थविरवरोभिक्षुः 'मदन्त' इति वा 'आयुष्मन्' इति वा समुदाचरितव्यः । आकांक्षमाणः आनन्द, संघों ममात्ययेन क्षुद्रानुक्षुद्रकाणि शिक्षापदानिसमूहन्तु। छन्दस आनन्द, मिक्षोः ममात्ययेन ब्रह्मदण्डं दातव्यम्।"

महापरिनिर्वाण सूत्र

हिन्दी भावानुवाद

तब भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द को आमन्त्रित किया –"आनन्द! हो सकता है कि तुम लोगों को ऐसा लगे कि यह प्रवचन अतीत शास्ता का है, अब हमारा शास्त्रा नहीं है। आनन्द ! ऐसा मत समझना। आनन्द! मैंने जो धर्म और विनय आप लोगों को उपदिष्ट किया है, समझाया है, मेरे जाने के बाद वही तुम्हारा शास्ता है। आनन्द! जैसे इस समय भिक्षु एक दूसरे को 'आवुस' कह कर सम्बोधित करते हैं, मेरे जाने के बाद उन्हें ऐसा नहीं करना है। आनन्द! स्थतिर भिक्षु, नवीन भिक्षु को, नाम या गोत्र से अथवा 'आवुस' सम्बोधन से पुकारें। नवीन भिक्षु स्थविरतरभिक्षुको 'भन्ते' या 'आयुष्मन्' सम्बोधन से पुकारें। आनन्द! मेरे बाद, आकांक्षा रखने वाला संघ छोटे से छोटे शिक्षापदों को भी एकत्र कर उस पर मनन करे। आनन्द ! मेरे बाद स्वेच्छचारी भिक्षु को ब्रह्म दण्ड दिया जाय।

"कतमो पन भन्ते ब्रह्मदण्डों" ति? 'छन्नो, आनन्द, भिक्खु यं इच्छेय्य तं वदेय्य, सो भिक्खूहि नेव वत्तब्बो, न ओवदितब्बो, न अनुसासितब्बो' ति। अथ खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि – "सिया खो पन भिक्खवे, एक भिक्खुस्सापि कंखा वा विमति वा बुद्धे वा धम्मे वा संघे वा भग्गे वा परिपदाय वा, पुच्छथ, भिक्खवे, मा पच्छा विप्पटिसारिनो अहुवत्थ – "सम्मुखीभूतो नोसत्था अहोसि, न भयं सक्खिम्हा भगवन्त सम्मुखा परिपुच्छितुं' ति। एवं बुत्तेते भिक्खू तुण्हीअहेसुं। दुतियम्पि, ततियम्पि खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि ———— । ततियम्पि खोते भिक्खू तुण्ही अहेसुं । अथ खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि – 'सियाय खो पन, भिक्खवे सत्थु गारवेनापि न पुच्छेय्याथ। सहायकोपि, भिक्खवे, सहायकस्स आरोचेतू' ति।

संस्कृत रूपान्तर

कतमः पुनः भदन्त! ब्रह्मदण्ड?" इति। "छन्द, आनन्द! मिथ्तुर्यदिच्छेत् तद् वदेत् स भिक्षुमिर्नैव वक्तव्यो नो पदेष्टव्यो नानुशासितव्यः" इति। अथ खलु भगवान् भिक्षूनमन्त्रयत् – "स्यात्खलु पुनः भिक्षवः ! एकस्य मिथ्तोरपिकांक्षा वा विमतिर्वा बुद्धे वा धर्मे वा संघे वा मार्गेवा प्रतिपदिवा, पृच्छथ, भिक्षवः ! मा पश्चादविप्रतिसारिणो भवतसम्मुखीभूतो नोशास्ताऽभूत्, न वयं शक्नुमो भगवन्तं सम्मुखं प्रतिप्रष्टुम्" इति। एवमुक्ते ते भिक्षवस्तूष्णीमभूवन् । द्वितीयमपि तृतीयमपि खलु भगवान् भिक्षूनमन्त्रयत्। तृतीयमपि खलुते भिक्षवस्तूष्णमिभूवन्। अथखलु भगवान् भिक्षून मन्त्रयत् – "स्यात्खलु पुनः भिक्षवः शारतुः गौरवेणापि न पृच्छेयुः। सहायकोऽपि भिक्षवः ! सहायकमारोचयतु" इति।

हिन्दी भावानुवाद

"भन्ते! यह ब्रह्मदण्ड क्या है?" आनन्द! स्वच्छन्द भिक्षु जो चाहे, वह

कहे किन्तु भिक्षुओं को उससे न बोलना चाहिए, न उसे सीख देनी चाहिए या अनुशासन भी नहीं करना चाहिए। तब भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया –"भिक्षुओं ! यदि बुद्ध,धर्म, संघ, मार्ग या प्रतिपत् में कोई शंका या विभति (असहमति) हो, तो पूछ लो। भिक्षुओ!बाद में कोई पश्चात्ताप न हो कि शास्ता हमारे सम्मुख थे किन्तु हम भगवान से आमने सामने कुछ न पूछ सके।" (बुद्ध के) ऐसा कहने पर वे भिक्षु चुप रहे। फिर भगवान् ने दूसरी बार और पुनः तीसरी बार भी भगवान् ने भिक्षुओं से ऐसा ही कहा। तीसरी बार भी भिक्षु चुप ही रहे। तब पुनः भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया – "भिक्षुओं! हो सकता है कि शास्ता के गौरव के कारण (संकोच या भयवश) न पूछ रहे हों, तो सहायक सहायक से कहे।" (अर्थात् अपने सहयोगी के माध्यम से पूछें)। एवं वुत्ते, ते भिक्खू तुण्ही अहेसुं । अथ खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच – "अच्छरियं भन्ते, अब्भुतं भन्ते! एवं प्रसन्नो अहं, भन्ते, इमस्मिंभिक्खु– संघे नत्थि एकभिक्खुस्सापि कंखा वा विमति वा बुद्धेवा धम्मे वा संघे वा मग्गे वा अटिपदाय वा" ति। 'पसादा, खो त्वं, आनन्द वदेसि। ञाणं एव होत्थ आनन्द तथागतस्स। नत्थि इमस्मिं भिक्खुसंघे एक भिक्खुससापि कंखा वा विमति वा बुद्धे वा धम्मे वा संघे वा भग्गे वा पटिपदाय वा । इमेसं हि, आनन्द, पञ्चन्नं भिक्खुसतानं यो पच्छिम को भिक्खु सो सोता पन्नो अविनिपातधम्मो नियतो सम्बोधिपरायणों' ति। अथ खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि – 'हन्ददानि, भिक्खवे, आमन्तयामिवो – वयधम्मा संगखारा अप्प –

संस्कृत रूपान्तर

एवमुक्ते ते भिक्षवस्तूष्णीमभूवन् । अथ खलु आयुष्मान् आनन्दों भगवन्तमेतदवोचत् –"आश्चर्य भदन्त्! अद्भुतं मदन्त! एवं प्रसन्नोऽहं, भदन्त! एतस्मिन् भिक्षुसंघे नास्त्येकस्यापि भिक्षोः कांक्षा वा विमतिर्वा बुद्धे वा धर्मे वा संघे वा प्रतिपदिवा" इति। "प्रसादात्खलु त्वम् आनन्द! वदसि। ज्ञानमेव ह्यत्र आनन्द! तथागतस्य, नास्त्यस्मिन् भिक्षुसंघे एकस्यापि भिक्षोः कांक्षा वा विमतिर्वा बुद्धे वा धर्मे वा संघे वा मार्गेवा प्रतिपदि वा। एषां हि आनन्द ! पञ्चानां भिक्षुशतानां यः पश्चिम को भिक्षुः का स्रोतस्यापन्नोऽविनिपातधर्मों नियतः सम्बोधिपरायण" इति। अथ खलु भगवान् भिक्षूनमन्त्रयत् – "हन्त! इदानीं भिक्षवः! आमन्त्रयामि वः, व्ययधर्माः संस्काराः

हिन्दी अनुवाद

ऐसा कहने पर भी वे भिक्षु मौन ही रहे। इस पर आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् से यह कहा – "भन्ते! आश्चर्य है, भन्ते! अद्भुत है। मै ऐसा प्रसन्न हूँ कि क्या कहूँ !! भन्ते! इस भिक्षुसंघ में बुद्ध या धर्म या संघ या प्रतिपद् के सम्बन्ध में किसी को भी शंका या दुविधा (असहमति या असमंजस) नहीं है।"

आनन्द! तुम प्रसन्नता से ऐसा कह रहे हो। आनन्द! तथागत का ज्ञान ही यहाँ (कारण) है कि इस भिक्षुसंघ में एक भी भिक्षु का बुद्ध या धर्म या संघ या मार्ग या प्रतिपत् के सम्बन्ध में शंका या विीति नहीं है। आनन्द! इन पाँच सौ भिक्षुओं में, जो सबसे छोटा भिक्षु है, वह भी (धर्म) की मूलधारा में पहुँचा हुआ है, मार्गच्युत होने वाला नहीं है। अविचलित रहने वाला है और सम्बोधिपरायण है।" पुनः भगवान ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया – "हे भिक्षुओं! अब मैं तुम्हें अन्तिम उपदेश दे रहा हूँ। संस्कार व्ययधर्मा है। अर्थात् संस्कार अव्यय – सदा एक जैसा रहने वाला अविकारी नहीं है। मादेन सम्पादथा' ति। अयं तथागतस्स पच्छिमा वाचा।

अथ खो भगवा पठमज्झानं समापज्जि। पइमज्झाना वुट्ठाहित्वा दुतियज्झानं ——— ततियज्झानं ——— चतुत्थज्झानं समापज्जि । चतुत्थज्झाना वुट्ठहित्वा आकासानञ्चायतनं समापज्जि । आकासानञ्चायतनसमापत्तिया वुट्ठहित्वा विञ्ञाणञ्चायतनं समापज्जि । विञ्ञाणञ्चायतनसमापत्तिया वुट्ठहित्वा आकिञ्चञ्ञायतनं समापज्जि। आकिञ्चञ्ञायतनसमापत्तिया वुट्ठहित्वा नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं समापज्जि। नेवसञ्ञानासञ्ञायतनसमापत्तिया वुट्ठहित्वा सञ्ञावेदयितनिरोधं समापज्जि। अथ खो आयस्मा आनन्दो आयस्मन्तं अनुरुद्धंएतदवोच – "परिनिब्बुतो, मन्ते अनुरूद्ध, भगवा" ति। "न आतुसो आनन्द, भगवा परिनिब्बुतो, सञ्ञावेदयित–निरोधं समापन्नो" ति । अथ खो भगवा सञ्ञावेदयित–

संस्कृत रूपान्तर

अप्रमादेन सम्पादयत" इति। इयं तथागतस्य पार्श्चमा वाक्।

अथ खलु भगवान् प्रथमं ध्यानं समापादि। प्रथम ध्यानादुत्थाय द्वितीयध्यानं समापादि। द्वितीयध्यानं —— तृतीयध्यानं —— चतुर्थध्यानं समापादि। चतुर्थध्यानादुत्थाय आकाशानन्त्यायतनं समापादि। आकाशानन्त्यायतनसमापत्तेरूत्थाय विज्ञानानन्त्यायतनं समापादि । विज्ञानानन्त्यायतन समापत्तेरूत्थाय आकिञ्चन्यायतनं समापादि । आकिञ्चनानन्त्यायतनसमापत्तेरूत्थाय नैवसंज्ञानासंज्ञानायतनं समापादि। नैवसंज्ञानासंज्ञानायतनसमापत्तेरूत्थाय संज्ञावेदयितृनिरोधं समापादि । अथ खलु आयुष्मान् आनन्द आयुष्मन्तमनुरूद्धमवोचत्परिनिर्वृतो महन्त अनुरूद्ध! भगवान्" इति। "न, आयुष्मन् आनन्द! भगवान् परिनिर्वृतः संज्ञावेयितृनिरोधं समापन्न" इति। अथ खलु भगवान् संज्ञावेदायितृनिरोध –

(अतः) अप्रमादपूर्वक इनका सम्पादन करो (प्रयत्नपूर्वक संस्कारवान् रहो) ।" यह तथागत का अन्तिम वचन है। तत्पश्चात् भगवान् ने प्रथम ध्यान लगाया। प्रथम ध्यान से उठकर द्वितीय ध्यान में पहुँचे। इसी प्रकार, क्रमशः द्वितीय से तृतीय और तृतीय से चतुर्थ ध्यान में पहुँचे । चतुर्थ ध्यान से आगे आकाशानन्त्यायतन को प्राप्त हुए। आकाशानन्त्यायतनसमापत्ति से उठकर विज्ञानानन्त्यायतन में पहुँचे। विज्ञानानन्त्यायतन समापत्ति से उठकर आकिञ्चन्यायतन को प्राप्त हुए। आकिञ्चान्यायतनसमापत्ति से उठकर नैवसंज्ञानासंज्ञानायतन में पहुँचे। फिर नैवसंज्ञानासंज्ञानायतनसमापत्ति से उठकर संज्ञावेदयितृनिरोध को प्राप्त हुए। तब आयुष्मान आनन्द ने आयुष्मान् अनिरूद्ध से कहा – "भन्ते अनिरूद्ध! क्या भगवान् परिनिर्वृत हो गये?" "नहीं, आयुष्मान् आनन्द! भगवान् परिनिर्वृत नहीं हुए हैं, संज्ञावेदपितृ निरोध की स्थिति में पहुँचे हैं । तब भगवान् पुनः (व्युतकम से) निरोधसमापत्तिया वुट्ठहित्वा नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं—विञ्ञाणञ्चायतनं —— आकासनञ्चायतनं —— चतुत्थं झानं —— ततियं झानं —— दुतियं झानं —— पंठमं झानं समापज्जि। पठमज्झाना वुट्ठहित्वा दुतियज्झानं —— ततियज्झानं —— ततियज्झानं —— चतुत्थज्झानं समापज्जि। चतुत्थज्झाना वुट्ठहित्वा समनन्तरा भगवा परिनिब्बायि । परिनिब्बुते भगवति, सह परिनिब्बाना, महाभूमिचालो अहोसि भिवनको लोमहंसो। देवदुन्दुभियो च फलिंसु । परिनिब्बुते भगवति, सह परिनिब्बाना, ब्रह्मा सहंपति इमं गाथं अभासि –

'सब्बेव निक्खिपिस्सन्ति, भूता लोके समुस्सयं ।
यत्थ एतादिसी सत्था, लोके अप्पटिपुग्गलो ।।
तथागतो बलप्पत्तो सम्बुद्धो परिनिब्बुतो' ति ।।

संस्कृत रूपान्तर

समापत्तेरूत्थाय नैवसंज्ञानासंज्ञानायतनं आकिञ्चन्यायतनं —— विज्ञानानन्त्यायतनं —— आकाशानन्त्यायतनं —— चतुर्थं ध्यानं —— तृतीयं ध्यानं —— तृतीय ध्यानं —— द्वितीयं ध्यानं —— प्रथमं ध्यानं समापादि। प्रथमध्यानादुत्थय द्वितीयं ध्यानं समापादि । द्वितीयध्यानादुत्थाय तृतीयंध्यानं, तृतीयध्यानादुत्थाय चतुर्थंध्यानं समापादि। चतुर्थध्यानादुत्थाय समनन्तरं भगवान् परिनिरवारीत् । परिनिर्वृते भगवति, सह परिनिर्वाणेन महाभूमिचालोऽभूत्, भीषण

ब्रह्मा सदस्यतिः इमां गाथामभाषिष्ट –

"सर्व एव निश्तेप्स्यन्ति भूताः लोके समुच्छ्रयम् ।
यथैतादृशः शास्ता लोकेऽप्रति पुदगणः ।
तथागतो बलप्राप्तः सम्बुद्धः परिनिर्वृतः ।।" इति।

हिन्दी भावानुंवाद

संज्ञावेथितृनिरोध समापत्ति से उठकर नैवसंज्ञानासंज्ञानायतन को प्राप्त हुए। नैवसंज्ञानासंज्ञानायतनसमापत्ति से उठकर आकिञ्यहन्यायतन को —— विज्ञानानन्त्यायतन को —— आकाशानन्त्यायतन को —— चतुर्थध्यानं को —— तृतीयध्यानं को —— द्वितीय ध्यानं को और फिर प्रथम ध्यानं को प्राप्त हुए । फिर प्रथम ध्यान को प्राप्त हुए। फिर प्रथम ध्यान से उठकर द्वितीय ध्यान में पहुँचे, द्वितीय ध्यान से तृतीय और तृतीय से चतुर्थ ध्यान को प्राप्त हुए। चतुर्थ ध्यान से उठने के साथ ही भगवान् परिनिर्वाण को प्राप्त हुए। भगवान् के परिर्वृत होते ही, परिनिर्वाण के साथ ही भीषण रोमाञ्चकारी महाभूचाल आया और देवदुन्दुभियां बज उठीं। भगवान् के परिनिर्वृत हो जाने पर, परिनिर्वाण के साथ ही सदस्पति ब्रह्मा ने यह गाथा कही –

"संसार में सभी प्राणियों का शरीरपात होगा तथापि लोक में, इस प्रकार के अद्वितीय महापुरूष, तथागत, आत्मबलसम्पन्न, शास्ता बुद्ध भी परिनिर्वाण को प्राप्त हुए।" परिनिब्बुते भगवति, सह परिनिब्बाना सक्को देवानं इन्दो इमं गाथं अभासि –

'अनिच्चा बत संखारा उप्पादवयधम्मिनो ।
उपज्जित्वा निरुज्झन्ति तेसं वूपसमोसुखो' ति ।।

परिनिब्बुते भगवति, सह परिनिब्बाना, आयस्मा अनुरुद्धो इमा गाथायो अभासि–

नाहु अस्सासपस्सासो, ठितंचित्तस्स तादिनो।
अनेजो तन्तिमारब्भ, यं कालं अकरी मुनी ।।
असल्लीनेन चित्तेन, वेदनं अज्झवासयि ।
पज्जोतस्सेव निब्बानं विमोखो चेतसो अहू' ति ।।

संस्कृत रूपान्तर

परिनिर्वृते भगवति, सह परिनिर्वाणेन शक्रो देवानामिन्द्र इमां गाथामभाषिष्ट–

"अनित्याः बत संस्कारा उत्पादव्ययधर्मिणः।

उत्पद्य निरुध्यन्ते तेषामुपशमः सुखम् ।।" इति।

परिनिर्वृते भगवति, सह परिनिर्वाणेन, आयुष्मान् अनिरुद्ध इमें गाथे अभाषिष्ट–

"न खल्वाश्वासप्रश्वासः स्थितचित्तस्य तापिनः ।

अनेजः शान्तिमारभ्य यं कालमकरोन्मुनिः।।

असल्लीलेन चित्तेन वेदनामध्यवासयत् ।

प्रद्योतस्यैव निर्वाणं विमोक्षश्चेतसोऽभूत् ।।" इति।

हिन्दी भावानुवाद

भगवान् के परिनिर्वृत होने पर, परिनिर्वाण के साथ ही देवेन्द्र शक्र ने यह गाथा कही –

"संस्कार अनित्य हैं, उत्पन्न और नष्ट होने वाले हैं। (जो) उत्पन्न होकर नष्ट होते हैं, उनका शान्त हो जाना ही सुख है।।"

भगवान् के परिनिर्वृत होने पर, परिनिर्वाण के साथ ही, आयुष्मान् अनिरूद्ध ने इन गाथाओं को कहा –

"स्थिरचित्त तपस्वी (तथागत) को आश्वास–प्रश्वास नहीं रहा। शान्ति के लिए निष्काम मुनि ने अपनी आयु (काल) व्यतीत की। असंलिप्त चित्त से वेदना को छोड़ दिया। जाज्वल्यमान दीपक के बुझने के समान ही चित्त का विमोक्ष हुआ है।।"

परिनिब्बुते भगवति, सह परिनिब्बाना, आयस्मा आनन्दो इमं गाथं अभासि–

तदासि यं भिंसन कं तदासि लोमहंसनं ।

सब्बाकारवरूपेते, सम्बुद्धे परिनिब्बुते' ति ।।

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स।

संस्कृत रूपान्तर

परिनिर्वृते भगवति, सह परिनिर्वाणेन, आयुष्मान् आनन्द इमां गाथामभाषिष्ट –

"तदासीद्यद्भीषणकं तदा सील्लोमर्षणम् ।

सर्वाकारवरोपेते सम्बुद्धे परिनिर्वृते ।।" इति।

नमस्तस्मै भगवतेऽर्हते सम्पक्सम्बुद्धाय ।।

हिन्दी भावानुवाद

भगवान् के परिनिर्वृत हो जाने पर, परिनिर्वाण के साथ ही आयुष्मान् आनन्द ने यह गाथा कही –

"जब सर्वोत्तमस्वरूप में अवस्थित भगवान् बुद्ध परिनिर्वाण को प्राप्त हुए, उस समय जो भीषण भूचाल हुआ और भय के कारण सब रोमान्चित हो गये।।

उस भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध को नमस्कार ।।

टिप्पणी

'महापरिनिब्बान सुत्त' सुत्तपिटक के दीघनिकाय से उद्धृत है। इसके अन्तर्गत भगवान् बुद्ध के धर्म और विनय से सम्बद्ध वचन, उपदेश के रूप में संग्रहीत हैं। भगवान् बुद्ध ने अपने लौकिक जीवन के अन्तिम क्षणों में आनन्द और अनिरूद्ध आदि प्रमुख शिष्यों के समक्ष धर्म, बुद्ध और संघ के सम्बन्ध में शंका या जिज्ञासा आमन्त्रित की थी। शिष्यों को सन्तुष्ट करने के पश्चात् वे योगसिद्धि का आश्रय लेकर महापरिनिर्वाण को प्राप्त हुए। इस पाठ में योग के ध्यानक्रम में ऊपर उठने और फिर वापस आने का प्रक्रियारहित निर्देश है।

अतीतसत्थुकं पावचनं –

अतीतशास्तृकं प्रावचनम् । अति + इ + क्त – अतीत विशेषणपद। बीता हुआ, परे गया हुआ। शास्+ तृच् – शास्तृ (शास्ता) । शस्तृ + क। उपदेशक, गुरू, आचार्य, विशेषतः बौद्ध या जैन धर्म का। प्र + वच् + ल्युट – प्रवचनम् । प्रवचनमेव प्रावचनम् । अतीतशास्तृकं प्रावचनम् – ऐसा उपदेश, जिसका उपदेशक या आचार्य नहीं रहा (परे संसार से चला गया) । भगवान् बुद्ध ने ऐसा इसलिएं कहा कि कहीं शिष्य अश्रद्धावश बुद्धवचनों की अवलेहना न करें। छन्नस्स – छन्दसे । छन्द् + असुन् , चतुर्थी विभक्ति, एकवचन। 'छन्दस्' का अर्थ है अपनी मरजी का मालिक, स्वेच्छाचारी, किसी बन्धन को न मानने वाला।

ब्रह्मदण्डा –

ब्रह्मदण्डः, ब्रह्मदण्डम् । 'दण्ड' शब्द पुल्लिंग और नपुंसकलिंग दोनों में पठित है। ब्रह्मणा, ब्रह्मणे, ब्रह्मणो, ब्रह्मणि वा दण्डंवा। शास्ता ने कहा कि स्वेच्छाचारी भिक्षु को ब्रह्मदण्ड देना चाहिए। शिष्य आनन्द को शंका हुई (क्योंकि वैदिक संन्यासी जो दण्ड धारण करते हैं, उसे भी 'ब्रह्मदण्ड' कहते हैं)। तब शास्ता ने ब्रह्मदण्ड का विधान बताया कि वैसे भिक्षु से न बोलना, न शिक्षा देना, न उसे अनुशासित करना ही ब्रह्मदण्ड है। कहावत है – वध से भला त्याग। आरोचेतु – आरोचयतु । आ + रुच् , लोट् लकार, प्र. पु., एक वचन। अपनी पसन्द बतायें। संस्कृत में 'रूच' धातु पसन्द होने या

चमकने के अर्थ में है, कहने के अर्थ में नहीं। परिपदाय – प्रतिपदि । यह प्रयोग सम्भवतः प्रतिपत्ति या शरणागति के लिए किया गया है। वैसे 'प्रतिपद्' का अर्थ श्रद्धा युक्त बुद्धि या प्रज्ञा भी है। प्रति + पद् + क्विप्, सप्तमी विभक्ति, एक वचन।

संखाराः –

बौद्धधर्म में 'संखार' शरीर धर्म के लिए प्रयुक्त हुआ है। ये अनित्य हैं, उत्पन्न होकर क्षीण (– नष्ट या समाप्त) हो जाते हैं।

2.5 धम्मपदसंगहो

1. नहि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचनं ।
   अवेरेन च सम्मन्ति, एस धम्मो सनन्तनो ।।5।।
2. यथा अगारं सुच्छन्नं वुट्ठि न समतिविज्झति ।
   एवं सुभावितं चित्तं रागो न समतिविज्झति ।।14।।
3. इध नन्दति पेच्चनन्दति कतपुञ्ञो उभयत्थ नन्दति।
   'पुञ्ञं में कतं' ति नन्दति भिय्यो नन्दति सुग्गतिं गतो ।।18।।
4. अचिरं बत यं कायो पठविं अधिसेस्सति ।
   छुद्दो अपेतविञ्ञाणों निरत्थं व कलिंगरं ।।41।।
5. यथापि भमरो पुप्फं वण्णगन्धं अहेष्यं ।
   पलेति रसं आदाय एवं गामे मनुनी चरे ।। 49 !।

संस्कृत रूपान्तर

धर्मपदसंग्रहः

1. नहि वैरेण वैराणि शाम्यन्तीह कदाचन ।
   अवैरेण च शाम्यन्त्येष धर्मः सनातनः ।। 5 ।।
2. यथागारं सुच्छन्नं वृष्टिर्न समतिविध्यति ।
   एवं सुभावितं चित्तं रागो न समतिविध्यति ।। 14 ।।
3. इह नन्दति प्रेत्य नन्दति कृतपुण्यः उभयत्र नन्दति ।
   पुण्यं में कृतमिति नन्दति भूयो नन्दति सुगतिं गतः ।। 18 ।।
4. अचिरं बतायं कायः पृथिवीमधिशेष्यते ।
   क्षुद्रोऽपेतविज्ञानो निरर्थमिव कलिंगम् ।। 41 ।।
5. यथापि भ्रमरः पुष्पं वर्णगन्धमहेडमानः ।

पलायते रसमादाय एवं ग्रामे मुनिश्चरेत् ।। 49 ।।

हिन्दी भाकानुवाद

धर्मपदसंग्रह

1. इस संसार में वैर से वैर कभी शान्त नहीं होता अपितु अवैर (प्रेम) से ही शान्त होता है, यी सनातन धर्म (नियम) है। ।। 5 ।।

2. जिस प्रकार अच्छी तरह छाये गये घर के अन्दर वर्षा का पानी ऊपर से नहीं घुसता, उसी प्रकार,सुभाषित चित्त्त में राग का प्रवेश नहीं होता।।14।।

3. इस लोक में आनन्दित होता है, परलोक में आनन्दित होता है, पुण्य करने वाला दोनों जगह आनन्दित होता है । 'मैने पुण्य किया' – ऐसा सोचकर आनन्दित होता है और फिर अच्छी गति को निर्वाण को पाकर आनन्दित होता है।। 18।।

4. यह शरीर शीघ्र ही पृथ्वी पर गिरकर पड़ जायेगा। फिर विज्ञान रहित क्षुद्र शरीर सूखे काठ या कण्डे के समान निरर्थक हो जायेगा।।41।।

5. जिस प्रकार भौंरा फूल के रंग गन्ध की अवहेलना न करता हुआ भी रस लेकर उड़ जाता है, उसी प्रकार मुनि को भी ग्राम–चर्या करनी चाहिए।।49।।

6. दीघा जागरतो रत्ती दीघं सन्तस्स योजनं ।
   दीघं बालानं संसारो सद्धम्मं अतिजानतं ।। 60।।

7. न हि पापं कतं कम्म सज्जु रवीरं व मुच्चति ।
   डहन्तं वालं अन्वेति भस्माछन्नो व पावको ।।71।।

8. उदकं नयन्ति नेत्तिका, उसुकारा नमयन्ति तेजनं ।
   दारूं नमयन्ति तच्छका, अत्तानं दमयन्ति पण्डिता ।।80।।

9. सेलो यथा एकघनो वातेन न समीरति ।
   एवं निन्दापसंसेसु न समिञ्जन्ति पण्डिता ।।81।।

10. यो सहस्सं सहस्सेन संगामें मानुसे जिते।
    एकञ्च जेय्यमत्तानं स वे संगामजुत्तमो ।।103।।

संस्कृत रूपान्तर

6. दीर्घा जाग्रतो रात्रिर्दीर्घ श्रान्तस्य योजनम् ।
   दीर्घो बालानां संसारः सद्धर्ममविजानताम् ।।60।।

7. नहि पापं कृतं कर्म सद्यः क्षीरमिव मुञ्चति।
   दहन्बालमन्वेति अस्माच्छन्न इव पावकः ।।71।।

8. उदकं नयन्ति नेतृका इषुकाराः नमयन्ति तेजनम् ।
दारूं नमयन्ति तक्षका आत्मानं दमयन्ति पण्डिताः ।।80।।

9. शैलो यथैकघनो वातेन न समीर्यते ।
एवं निन्दाप्रशंसासु न समीर्यन्ते पण्डिताः ।।81।।

10. यः सहस्रं सहस्रेन संग्रामे मानुषान् जयेत् ।
एकञ्च जययेदात्मानं स वै संग्रामजिदुत्तमः ।।103।।

हिन्दी भावानुवाद

6. जागने वाले केलिए रात लम्बी होती है, थके हुए के लिए एक योजन भी बहुत लम्बा होता है। सद्धर्म को न जानने वाले मूर्खों का संसार भी बड़ा होता है।। 60।।

7. व्यक्ति को उसके द्वारा किया गया पाप कर्म, बरगद के दूधिया रस की तरह तुरन्त नहीं छोड़ता और राख से ढंकी हुई अग्नि (चिनगारी) की तरह जलाता हुआ उस मूर्ख के पीछे दौड़ता है।।71।।

8. नाली पानी को ले जाती है, बाण बनाने वाला सरकण्डे को सीधा करता है, बढ़ई लकड़ी को सीधा करता है। और उसी तरह विज्ञजन अपनी इन्द्रियों का दमन करते हैं।।80।।

9. जिस प्रकार उठा हुआ भारी पर्वत (तूफानी) हबा द्वारा नहीं हिलाया जा सकता, उसी तरह पण्डितजन निन्दा या प्रशंसा से विचलित नहीं होते।।81।।

10. जो (योद्धा) संग्राम में हजारों (योद्धाओं) को हजार बार जीत लेता है वहीं यदि अकेले केवल अपने को जीत ले (त्मि नियंत्रण) कर ले तो वह श्रेष्ठ युद्धविजयी है।।103।।

11. परिजिण्णं इदं रूपं रोगनि ड्डं पभङ्गणं।
भिज्जति पूतिसन्दोहो मरणन्तं हि जीवितम् ।।148।।

12. एकं धम्मं उतीतस्स मुसावादिस्स जन्तुनो।
वितिण्णपरलोकस्स नत्थि पापं अकारियं ।।176।।

13. यो च बुद्धञ्च धम्मञ्च सरणं गतो ।
चत्तारि अरियस्च्यानि सम्पप्पञ्ञाव पस्सति ।।190।।

14. दुक्खं दुक्खसमुप्पादं दुक्खस्स च अतिक्कमं ।
अरियञ्चट्ठङ्गिकं मग्गं दुक्खूपसमगामिनं ।।191।।

15. एतं खो सरणं खेमं एतं सरणमुत्तमं।
एतं सरणभागम्म सब्बदुक्खा पमुच्चति ।।192।।

संस्कृत रूपान्तर

11. परिजीर्णमिदं रूपं रोगनीडं प्रभङ्गुरम् ।
भिद्यते पूतिःसन्दौहो मरणान्तं हि जीवितम् ।।148।।

12. एकं धर्ममतीतस्य मृषावादिनो जन्तोः ।
वितीर्णपरलोकस्य नास्ति पापमकार्यम् ।।176।।

13. यश्च बुद्धञ्च धर्मञ्च सङ्घञ्च शरणं गतः।
चत्वार्यार्यसत्यानि सम्पक् प्रज्ञया पश्चति ।।190।।

14. दुःखं दुःखसमुत्पादं दुःखस्य चातिक्रमम् ।
आर्याष्टाङ्गिकं मार्गं दुःखोपशमगामिनम् ।।191।।

15. एतत्खलु शरणं क्षेममेतच्छरणमुत्तमम् ।
एतच्छरणमागत्य सर्वदुःखात्प्रमुच्यते ।।192।।

हिन्दी भावानुवाद

11. यह रूप क्रमशः क्षीण (जीर्ण) होने वाला, रोगों का घर, क्षणभङ्गुर, अपवित्रता की राशि और बदलने वाला है। यह जीवन भी मरणपर्यन्त ही है।।148।।

12. धर्म का उल्लंघन करने वाले, असत्यवादी और परलोक को न मानने वाले मनुष्य के लिये पाप अकार्य नहीं है। अर्थात् वह बेहिचक पाप कर सकता है।।176।।

13. जो व्यक्ति बुद्ध, धर्म और सङ्घ की शरण में पहुँच गया है, वह अपनी विवेक बुद्धि से चार आर्य सत्यों को अच्छी तरह देख सकता है।।190।।

14. दुःख, दुःख का समुत्पाद, दुःख का निरोध, दृःखनिरोधगामिनी प्रतिपत् तथा श्रेष्ठ अष्टाङ्गिक मार्ग– ।।191।।

15. यही कल्याणकारी और उत्तम शरण है। इस शरण में आकर व्यक्ति हर प्रकार के सभी दुःखों से मुक्त हो जाता है।।192।।

16. मा पियेहि समागञ्छि अप्पियेहि कुदाचनं ।
पियानमदस्सनं दुक्खं अप्पियानञ्च दस्सनं ।।210।।

17. यो वे उप्पतितं कोधं रथं भन्तं व धारये।
तमहं सारथि ब्रूमि रस्मिग्गाहो, तरो जनो ।।222।।

18. अयसा वमलं समुट्ठितं, तदुपट्ठाय तमेव खादति।
एवं अतिधोनचारिनं सककम्मानि नयंति दुग्गतिं ।।240।।

19. सुदस्सं वज्जं अञ्ञेसं अत्तनो पन दुद्दसं ।
परेसं हि सो वज्जानि ओपुनाति यथा भुसं
अत्तनो पन छादेति कलिं व कितवा सठो ।।252।।

20. न तेत भिक्खु भवति यावता भिक्खते परे ।
विस्सं सम्मं समादाय भिक्खु होति न तावता।।266।।

संस्कृत रूपान्तर

16. मा प्रियैः समागच्छाप्रियैः कदाचन।
प्रियाणामदर्शनं दुःखमप्रियाणाञ्च दर्शनम् ।।210।।

17. यो वैउत्पतितं क्रोधं रथं भ्रान्तमिव धारयेत्।
तमहं सारथिं ब्रवीमि रश्मिग्राह इतरो जनः।।222।।

18. अयस इव भलं समुत्थितं तत उत्थाय तदेव खादति।
एवमतिधावनचारिणं स्वानि कर्माणि नयन्ति दुर्गतिम् ।।240।।

19. सुदर्शनवद्यमन्येषामात्मनः पुनः दुर्दर्शम्।
परेषां हि सोऽवद्यानवपुनाति यथा बुसम्।
आत्मनः पुनः छादयति कलिमिवकितवः शठः ।।252।।

20. न तावता भिक्षुर्भवति यावता भिक्षते परान् ।
वेष्यं सम्यक् समादाय भिक्षुर्भवति न तावता।।266।।

हिन्दी भावानुवाद

16. प्रिय के साथ मत जाओ और अप्रियों के साथ तो कभी भी मत जाओ प्रिय लोगों का अदर्शन (बिछुड़ना) और अप्रिय लोगों का दर्शन (मिलाना) दुःखदायी होता है।।210।।

17. जो उठे हुए क्रोध को असन्तुलित रथ की भाँति नियन्त्रण में कर लेता है, मै उसी को सारथि मानता हूँ, अन्य लोग तो केवल लगाम पकड़ने वाले हैं।।222।।

18. लोहे से उठा हुआ मल (जंग) उसी से उठ कर उसको खा जाता हैं। इसी प्रकार (भौतिकता के पीछे) बहुत दौड़ने वाले को उसके ही कर्म दुर्गति तक पहुँचा देते हैं।।240।।

19. जो दूसरों के बुरे कर्मों को अच्छी तरह और अपने बुरे कर्मों को कठिनाई से देखता है, वह शठ व्यक्ति कलि की भाँति दूसरे के बुरे कर्म को भूसे की तरह फैला देता है और अपने बुरे कर्मों को छल पूर्वक छिपा लेता

है।।252।।

20. दूसरों से भिक्षा माँगने से कोई भिक्षु नहीं हो जाता और भिक्षु के लिए उपयुक्त वेष (चीवरादि) धारण करके भी भिक्षु नहीं होता ।।266।।

21. योध पुञ्ञञ्च पापञ्च बाहित्वा ब्रह्मचरियता।
संखाय लोके चरति स वे भिक्खू ति वुच्चति ।।267।।

22. 'सब्बे संखारा अनिच्चा' ति यदा पञ्ञाय पस्सति।
अथ निब्बिन्दती दुक्खे एस मग्गो विसुद्धिया ।।277।।

23. 'सब्बे संखारा दुक्खा' ति यदा पञ्ञाय पस्सति।
अथ निब्बिन्दती दुक्खे एस मग्गो विसुद्धिया ।।278।।

24. 'सब्बे थम्मा अनत्ता' तियदा पञ्ञाय पस्सति ।
अथ निब्बन्दती दुक्खे एस मग्गो विसुद्धिया ।।279।।

25. सेय्यो अयोगृको भुत्तो वत्तो अग्गिसिखूपमों।
यञ्ञे भुञ्जेय्य दुस्सीलो रटठपिण्डं असञ्ञतो ।।308।।

संस्कृत रूपान्तर

21. य इह पुण्यं चपापंच वाहयित्वा ब्रह्मचर्यवान् ।
संख्याय लोके चरति स वै भिक्षुरित्युच्यते ।।267।।

22. सर्वे संस्कारा अनित्या इति यदा प्रज्ञाय पश्यति ।
अथ निर्विन्दति दुःखान्येष मार्गों विशुद्धेः ।।277।।

23. सर्वे संस्काराः दुःखानीति यदा प्रज्ञाय पश्यति।
अथ निर्विन्दति दुःखान्येष मार्गों विशुद्धेः ।।278।।

24. सर्वे धर्मा अनित्या इति यदा प्रज्ञाय पश्यति ।
अथ निर्विन्दति दुःखान्येष मार्गों विशुद्धेः ।।279।।

25. श्रेयानयोगोलो भुक्तस्तप्तोऽग्निशिखोपमः।
यश्चेदभुञ्जति दुःशीलोराष्ट्रपिण्डमसंयतः ।।308।।

हिन्दी भावानुवाद

21. लोक में जो पुण्य और पाप को छोड़कर ब्रह्मचर्यवान् होता है और प्रारब्धवश इस संसार में अच्छी तरह समझते हुए विचरण करता है, वही भिक्षु कहलाता है।।267।।

22. 'सभी संस्कार अनित्य हैं' – ऐसा अच्छी तरह जानकर जो (लोक व्यवहार को) देखता है, तब दुःखों के प्रति दुःख प्रकट करता है– यही विशुद्धि

का मार्ग है।।277।।

23. 'सभी संस्कार दुःखद हैं'– ऐसा अच्छी तरह जानकर जो देखता है, तब दुःखों के प्रति दुःख प्रकट करता है – यही विशुद्धि का मार्ग है।।278।।

24. 'सभी (शरीर–) धर्म अनित्य हैं – ऐसा अच्छी तरह जानकर जो देखता है, तब दुःखों के प्रति दुःख प्रकट करता है– यही विशुद्धि का मार्ग है।।279।।

25. जो दुराचारी असंयत होकर राष्ट्र के धन को खाता है। स्वार्थ में उपयोग करता है) उसके लिए आग की लपट के समान तप्त लोहे का गोला खा लेना श्रेयस्कर है।।308।।

26. दिवा तपति आदिच्चो रत्तिं आभाति चन्दिमा ।
सन्न द्धो खत्तियो तपति झायी तपति ब्राह्मणों
अथ सब्बं अहोरत्तिं बुद्धो तपति तेजसा ।।387।।

27. न जटाहि नं गोत्तेन न जच्चा होति ब्राह्मणों ।
यम्हि सच्चं च धम्मो च सो सुची सो च ब्राह्मणो।।393।।

28. किं तेजटाहि दुम्मेध, किं ते अजिनसाटिया ।
अब्भन्तरं ते गहनं, बाहिरं परिमज्जसि।।394।।

29. पंसुकूलधरं जन्तुं किसं धमनिसन्थतं ।
एकं वनस्मिं झायन्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ।।395।।

संस्कृत रूपान्तर

26. दिवा तपत्यादिव्यो रात्रावाभाति चन्द्रमाः ।
सन्नद्धः क्षत्रियस्तपति ध्यायी तपति ब्राह्मणः
अथ सर्वमहोरात्रं बुद्धस्तपति तेजसा ।।387।।

27. न जटाभिर्न गोत्रेण जात्या भवति ब्राह्णः ।
यस्मिन् सत्यञ्च धर्मश्च सशुचिस्स च ब्राह्मणः ।।393।।

28. किं ते जटाभिर्दुमेध ! किं तेऽजिनशाट्या?।
अभ्यन्तरं ते गहनं बाह्यं परिमार्जयसि ।।394।।

29. पांशुकूलधरं जन्तुं कृशं धमनिसंस्तृतम् ।
एकं वने ध्यायन्तं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ।।395।।

हिन्दी भावानुवाद

26. दिन में सूर्य तपता है, रात में चन्द्रमा चमकता है। युद्ध के लिए सदैव तैयार क्षत्रिय तपता है और ध्यान में निरत ब्राह्मण तपता है। किन्तु भगवान् बुद्ध अपने तेज से रात–दिन सदैव तपते रहते हैं।।387।।

27. न तो जटाओं से, न गोत्र से और न ही जाति से कोई ब्राह्मण होता है। जिस मनुष्य में सत्य है,धर्म है, वही पवित्र है और वही ब्राह्मण है।।393।।

28. अरे कुबुद्धे! तेरी जटाओं और मृगचर्म से क्या लाभ? तुम्हारा अन्तः करण तो गहरा काला है और तुम केवल अपने को बाहर से संवारते हो।।394।।

29. धूलधूसरित, कृशकाय और जिसकी सारी धमनियां फैली हुई दिखाई दे रही हैं – ऐसा मनुष्य, एकाकी, वन में ध्यानमग्न जो है उसे मैं ब्राह्मण कहता (मानता) हूँ।।395।।

टिप्पणी –

'धम्मपद', यमकवग्ग, चित्तवर्ग, पुप्फवग्ग और छब्बीस वर्गों में विभक्त है। यह इस संग्रह पाठ में धम्मपद के इन्हीं वर्गों से उद्धृत उपयोगी अर्थवाली महत्त्वपूर्ण गाथायें संकलित की गई हैं। गाथा क्रम 4 – पठविं अधिसेस्सवि– पृथिवीम् अधिशेष्यते। 'अधि' के योग से 'पठविं' में दुतिया विभत्ति। अधि + शी,लृट् लकार,प्र.पु., एक वचन। पृथिवी पर (निश्चेष्ट,निष्प्राण होकर) पड़ जायेगा। कलिङ्गरं– कलिङ्गरम् । 'कलिङ्गर' शब्द संस्कृत कोश में प्राप्त नहीं हैं। 'कडङ्गर' यथाकथञ्चित् मिलता है जिसका अर्थ है, सूखा गोबर या कण्डा। यद्यपि वह निरर्थक नहीं होता तथापि इधर–उधर पड़ा रहता है। 'निरत्थं व' का आशय निःसार, बेकार, फालतू आदि से है। प्राणवान् शरीर जैसा उपयोगी है, वैसा निष्प्राण शरीर तो नहीं । गा. क्र.–5 अहेठयं – अ–हेडमानः । अ+हेड्+धञ् – अहेडः+ शान च् (मानो) – अहेउमानः । अवहेलना या तिरस्कार न करता हुआ। मुनि (बौद्धभिक्षु) की ग्रामचर्या उपवन में भ्रमर की भाँति निर्लिप्ततया होनी चाहिए। गाथा क्र. 10 – सङ्गामजुत्तमो– सङ्गामजिदुत्तमः । सङ्ग्रामजित् + उत्तमः। सङ्ग्रामं जयति इति सङ्ग्रामजित्, तेषु तेषां वा उत्तमः सङ्ग्रामविजयी वीरों में सर्वश्रेष्ठ । प्र.वि., एक वचन। गाथा का भाव है कि आत्मविजयी ही सर्वश्रेष्ठ योद्धा होता है। गाथा क्र. 13 – चत्तारि अरियसच्चानि – चत्वारि आर्यसत्यानि । बौद्ध धर्म दर्शन में चार आर्यसत्यों का सिद्धान्त महत्वपूर्ण है। ये चार आर्यसत्य है। – दुःख, दुःखसमुदा,दुःखनिरोध और दुःखनिरोधगामिनी पतिपद् । आर्य का अर्थ है अर्हत्। अहेत् अर्थात् भगवान् बुद्ध द्वारा दृष्ट एवं प्रतिपादित होने के कारण ही इन्हें 'आर्यसत्य' कहा जाता है। दुःखादि चारों आर्यसत्य तथा अष्टाङ्गिक

मार्ग– ये बौद्ध दर्शन के पारिमाणिक शब्द हैं और इनकी व्याख्या विस्तृत होने से तथा प्रकृत में उपयोगी न होने से विस्तार नहीं किया जा रहा है। गाथा क्र. 22–23 – संखारा – संस्काराः । 'संखार' बौद्धदर्शन क पारिभाषिक शब्द है। और इसका अर्थ है – हेतु और प्रत्यय से उत्पन्न संस्कार अर्थात् जो मानव निर्मित हैं। ये संस्कार अनित्य हैं। शरीर स्वयं में अनित्य है। अतः शरीर धर्म रूप संस्कार भी अनित्य हैं। यहाँ वर्णित 'संस्कार' गर्भाधानादि षोऽश संस्कारों से भिन्न है। गाथा क्र. 24 – धम्मा= धर्माः। यहाँ 'धर्म' का अर्थ है। नाम–रूप। यह नाम और रूप भी अनित्य होता है। यह 'धर्म', सार्वभौम सत्य, सदाचार आदि रूप 'धर्म' से सर्वथा भिन्न है। नाम – रूप अर्थ लेने पर ही 'धर्म' की अनित्यता सङ्गत होगी।

सारांश

इकाई 2 के अन्तर्गत पालि साहित्य की प्रतिनिधि रचनाओं में से चयन कर पॉच पाठों का संकलन प्रस्तुत किया गया है। वे पॉच पाठ हैं – बावेरुजातकं, मायादवियासुपिनं, महाभिनिक्खमनं, महापरिनिब्बानसुत्तं और धम्मपदसंगहो। बावेरुजातकं में बोधिसत्त्व के मोर योनि में उत्पन्न होने की कथा है कि कुछ व्यापारी बावेरुराष्ट्र में, जहाँ कोई पक्षी न था, पहली बार एक कौआ लेकर गये। वहाँ के लोग कौवे पर मुग्ध होकर उसे मुँहमाँगा दाम देकर खरीद लिये। दूसरी बार व्यापारी एक मोर लेकर गये। व्यापारियों ने इसे भी वहाँ के लोगों को मुँहमाँगा दाम लेकर दे दिया। मोर के गुणों से रीझकर बावेरुराष्ट्र के लोगों ने कौवे की उपेक्षा की और भूखा प्यासा कौवा मलिन स्थान में चला गया।

'मायादेवियासुपिनं' में महारानी मायादेवी के गर्भ में बुद्ध के प्रविष्ट होने से पूर्व, उनके द्वारा देखे गये स्वप्न का वृत्तांत है।

'महाभिनिक्खमनं' में राजकुमार सिद्धार्थ के गृहत्याग की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डाला गया है।

'महापरिनिब्बानसुत्तं' में भगवान् शास्ता (तथागत) द्वारा आनन्द आदि प्रमुख शिष्यों को भिक्षुसंघ के व्यवहारके सम्बन्ध में बताया गया है। यह भगवान् बुद्ध का अन्तिम उपदेश है। अन्ततः शास्ता के महापरिनिर्वाण की स्थिति का वर्णन किया गया है।

'धम्मपदसंगहो' में 'धम्मपद' से शिक्षाप्रद नीतिपरक तीस गाथाओं को उद्धृत कर संकलित किया गया है।

प्रश्न खण्ड – क व्याख्यात्मक प्रश्न

1. अधोलिखित का हिन्दी भावानुवाद कीजिए –

क. आगतागता रट्ठवासिनो ——— लाभग्गयसग्गप्पत्तो अहोसि।

ख. चत्तारो किर नं महाराजानो ——— निपज्जापेसुं

ग. बोधिसत्तो पि खो छन्नं ——— पासादतलतो ओतरि ।

घ. अथ खो आयस्मा आनन्दो ——— सम्बोधि परायणो' ति।

ङ. यथा अगारं सुच्छन्नं ——— समतिविज्झति ।

2. अधोलिखित का संस्कृत रूपान्तर प्रस्तुत कीजिए।

क. एतं खो सरणं खेमं ——— पमुच्चति ।।

ख. पंसुकूलधरं जन्तु ——— ब्रूमि ब्राह्मणं।।

ग. अनिच्चा बत संखारा ——— सुखो' ति ।।

घ. निब्बुता नून सा माता ——— पती' ति ।।

खण्ड– ख टिप्पणात्मक प्रश्न

1. 'बावेरुजातकं' का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

2. 'बावेरुजातकं' में सन्निहित शिक्षा प्रस्तुत कीजिए।

3. 'मायादेवियासुपिनं' को संक्षेप में हिन्दी में प्रस्तुत कीजिए।

4. सिद्धार्थ गौतम के महाभिनिष्क्रमण की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालिए।

5. 'महापरिब्बानसुत्तं' के आधार पर भिक्षुसंघ के आचार का वर्णन कीजिए।

6. धम्मपद की कुछ गाथाओं का संकेत करते हुए उनका आशय प्रकाशित कीजिए।

खण्ड ग वस्तुनिष्ठात्मक प्रश्न

1. बोधिसत्त्व के मयूरयोनि में उत्पन्न होने पर वाराणसी में राज्य करते थे–

क. सोमदत्त, ख. ब्रह्मदत्त,

ग. प्रभुदत्त, घ. शिवदत्त।

2. व्यापारियों ने मयूर को कितने कार्षापण में बेचा?

क. एक सौ, ख. पॉच सौ,

ग. एक हजार, घ. डेढ़ हजार ।

3. महारानी मायादेवी को पलंग सहित कितने महाराजाओं ने उठाया–

क. चार, ख. दो,

ग. छः घ. आठ।

4. कृशागौतमी थी –

क. शूद्रकन्या, ख. ब्राह्मणकन्या,

NOTES